भारत में एसयूसीआई (सी)
ही एकमात्र साम्यवादी पार्टी
क्यों

शिवदास घोष

भारत में एसयूसीआई (सी) ही एकमात्र साम्यवादी पार्टी क्यों

लेनिन ने कहा था, ''सर्वहारा वर्ग की सही क्रांतिकारी पार्टी के बिना क्रांति नहीं हो सकती है।'' भारत में इस किस्म की कोई पार्टी नहीं थी–इसी समझ से एक सही कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में एसयूसीआई (कम्युनिस्ट) को निर्मित करने का कठिन संघर्ष शुरू हुआ। पार्टी गठन के इस संघर्ष के आधार के रूप में था पार्टी संगठन संबंधी लेनिनीय सिद्धांत और उसके दो स्तम्भ–जनवादी केन्द्रीयता और सामूहिक नेतृत्व। भारत में एक सही कम्युनिस्ट पार्टी गठित करने के प्रयास में दूसरों की विफलता के कारणों को सुनिर्दिष्ट रूप में चिह्नित करते हुए भारतीय पूंजीवाद के विकास के इतिहास को भी इस भाषण में साफ तौर पर पेश किया गया है। कोई पार्टी सही क्रांतिकारी पार्टी है कि नहीं, इस पर विचार करने के क्षेत्र में सही कसौटी के हिसाब से सांस्कृतिक और नैतिक मान की अपरिहार्यता का पहलू भी इस भाषण के जरिये स्पष्ट हुआ है।

कॉमरेडस्

अपने मुल्क में दो-दो कम्युनिस्ट पार्टियों के रहते हुए भी हम आप लोगों से एसयूसीआई को ही मजबूत करने के लिए क्यों आग्रह करते हैं–इस सवाल पर चर्चा करने के लिए आप लोगों ने मुझसे अनुरोध किया है। सवाल बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन अब तो कम्युनिस्ट पार्टियां सिर्फ दो ही नहीं हैं। सुनता हूं कि जल्दी ही एक तीसरी पार्टी भी बनाने की कोशिश की जा रही है। हालांकि, पहले इस मुल्क में कम्युनिस्ट पार्टी के नाम से एक ही पार्टी थी। 1964 में इस पार्टी से टूटकर सीपीआई और सीपीआई (एम) नाम से दो पार्टियां बनीं। फिर अभी नक्सलपंथी कहे जाने वाले कुछ कम्युनिस्ट नेता और कार्यकर्ता

सीपीआई (एम) से बाहर आकर एक और पार्टी बनाने की कोशिश कर रहे हैं। इस तरह कम्युनिस्ट पार्टी नामवाली पुरानी पार्टी अब तीन टुकड़ों में बंट गयी है। इस पुरानी कम्युनिस्ट पार्टी की तीनों धाराओं में से किसी एक का समर्थन करने की बजाय क्यों हम आपसे एसयूसीआई को ही समर्थन देने तथा ताकतवर बनाने का आग्रह करते हैं–मेरी समझ से सवाल को इस रूप में रखना ही बेहतर होगा।

गलतियों के स्वरूप का निर्धारण ही एक कम्युनिस्ट के लिए मूल विचारणीय विषय

हम शुरू में ही एक बात साफ कर लेना चाहेंगे। वह यह कि चूंकि इस देश में कम्युनिस्ट पार्टी नाम से परिचित पार्टी ने बहुत सारी गलतियां की है, सिर्फ इसी वजह से एक वैकल्पिक कम्युनिस्ट पार्टी के तौर पर हमने एसयूसीआई का निर्माण किया, बात ऐसी नहीं है। हम ऐसा नहीं सोचते हैं कि मजदूर वर्ग की कोई क्रांतिकारी पार्टी कभी गलती कर ही नहीं सकती; या उस पार्टी के गलती करते ही फौरन दूसरी पार्टी बना लेनी चाहिए, ऐसा भी हम नहीं मानते। कोई भी सच्चा मार्क्सवादी इस तरह से नहीं सोचता, क्योंकि कभी गलती नहीं करने का दावा तो सिर्फ वही कर सकता है जो कुछ करता ही न हो। जो पार्टी मजदूर वर्ग के मुक्ति-संघर्ष जैसी लम्बी और जटिल लड़ाई का संचालन करती है, गलती उससे हो ही सकती है और होती भी है। हर मार्क्सवादी यह जानता है। लेकिन साथ ही साथ मार्क्सवादी लोग यह भी जानते हैं कि कोई पार्टी दो तरह की गलती कर सकती है–एक तो यह कि मूल मार्क्सवादी दृष्टिकोण, विचार-विश्लेषण तथा उसकी प्रयोग पद्धति नहीं अपना पाने के चलते सिर्फ राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि जीवन के सभी क्षेत्रों में मार्क्सवाद द्वारा निर्धारित मूल नीति-सिद्धांतों पर अमल करने के मामले में गलती और इसके फलस्वरूप एक खास क्रांति का स्तर और उसकी रणनीति अर्थात एक खास क्रांति की मूलनीति तय करने में होने वाली गलती। याद रहे, इस तरह की गलती के साथ पार्टी के वर्ग चरित्र का प्रश्न ओत-प्रोत रूप से जुड़ा रहता है।

दूसरी तरह की गलती यह कि मार्क्सवादी दृष्टिकोण, विचार-विश्लेषण तथा उसकी प्रयोग-पद्धति का अनुसरण करने में बुनियादी तौर पर सही

रहते हुए भी पार्टी का आवश्यक ज्ञान और अनुभव कम होने के चलते मार्क्सवादी दृष्टिकोण के आधार पर ठोस वस्तुनिष्ठ परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए मूल नीति-सिद्धांतों का ठीक-ठीक प्रयोग नहीं कर पाने की गलती। यह दूसरे प्रकार की गलती होने से ही तुरंत उस पार्टी का वर्ग चरित्र पलट जाता है—बात ऐसी नहीं है। हालांकि, यह सच है कि इस तरह की गलतियां भी अगर लगातार एक पर एक होती जायें और उन गलतियों से उपयुक्त सबक लेकर आखिरकार उन्हें सुधारने में पार्टी नाकाम रहे, तो धीरे-धीरे कभी न कभी उस पार्टी का वर्ग स्वरूप भी बदल कर रहेगा ही। लेकिन पहली तरह की गलती अर्थात बुनियादी मार्क्सवादी दृष्टिकोण, विचार-विश्लेषण तथा प्रयोग पद्धति को न अपना सकने की गलती के साथ पार्टी के वर्ग चरित्र का सवाल प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। अगर ऐसा देखा जाये कि कोई पार्टी अपने को मार्क्सवादी-लेनिनवादी घोषित करती है और मार्क्सवाद-लेनिनवाद की भाषा में बात भी किया करती है, लेकिन विभिन्न क्षेत्रों में मार्क्सवादी दृष्टिकोण, विचार-विश्लेषण और कार्य प्रणाली पर अमल नहीं करती है, तो इसका मतलब यही समझना होगा कि पार्टी, चाहे जानबूझकर हो या अनजाने, मार्क्सवाद-लेनिनवाद और साम्यवाद का झंडा फहराते हुए भी असल में किसी दूसरे वर्ग के दृष्टिकोण, विचार-विश्लेषण और प्रयोग-पद्धति को ही अपनाकर चल रही है। **इसलिए गलती करके उसे स्वीकार कर लेना ही बड़ी बात नहीं है—गलती के स्वरूप का निर्धारण करना ही मार्क्सवादियों के लिए मूल विचारणीय विषय है।**

अतः जिस तरह यह बात ठीक नहीं है कि कोई पार्टी सही मायने में मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी अर्थात मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी के रूप में विकसित होने से कभी गलती कर ही नहीं सकती, ठीक उसी तरह सिर्फ इस बात की दुहाई देकर कि अमुक पार्टी ने बहुत सारी गलतियां की है, कोई मार्क्सवादी विकल्प के तौर पर कोई दूसरी कम्युनिस्ट पार्टी गठित करने का नैतिक अधिकार रखता है—ऐसा भी मैं नहीं सोचता हूं। इस तरह यह साफ है कि हमने एसयूसीआई को सिर्फ इसीलिए नहीं गठित किया कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी नामक पार्टी ने अतीत में बहुत सारी गलतियां की और अभी भी करती जा रही है। इस

देश में कम्युनिस्ट पार्टी नामधारी उक्त पार्टी को गठित करने में उसके संस्थापकों के अंदर बहुतेरों की–अनेक नेताओं और असंख्य कार्यकर्ताओं की गहन लगन, ईमानदारी और त्याग की कहानी मैं जानता हूं। उन्हें मैं बहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूं। लेकिन साथ ही इस सच्चाई को भी मैं किसी तरह मन से हटा नहीं पाता हूं कि चूंकि उन लोगों ने इसके जन्मकाल से ही एक कम्युनिस्ट पार्टी के गठन के लिए जरूरी सही वैज्ञानिक पद्धति पर अमल नहीं किया, इसलिए अपनी सारी लगन और त्याग के बावजूद वे लोग इसे मार्क्सवादी–लेनिनवादी अर्थात मजदूर वर्ग की एक क्रांतिकारी पार्टी के तौर पर ढाल नहीं पाये।

अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व के प्रति निष्ठा का अर्थ अंधानुकरण नहीं

सबसे पहले अगर हम इस विषय का विश्लेषण करें कि अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व के साथ इस पार्टी के संबंध का स्वरूप आज तक कैसा रहा है, तो आप आसानी से देख पायेंगे कि मार्क्सवादी–लेनिनवादी दृष्टिकोण के मुताबिक भारतीय सर्वहारा वर्ग का अगुआ दस्ता होने के नाते इसे इस मामले में जो सचेत भूमिका अदा करनी चाहिए थी, वह भूमिका अपने जन्मकाल से आज तक यह पार्टी कभी भी अदा नहीं कर सकी। बल्कि इस पार्टी के नेतागण हमेशा अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व का अंधतापूर्वक अनुकरण ही करते आये और इस तरह के अंधानुकरण का ही नतीजा है कि ये लोग न तो इस मुल्क में कभी सही मायने में क्रांतिकारी साम्यवादी आंदोलन का निर्माण कर सके और न विभिन्न मुल्कों की कम्युनिस्ट पार्टियों के बीच सैद्धांतिक संघर्ष के माध्यम से जो अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व गठित होता है, उस अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व के गठन में ही कोई भूमिका अदा कर सके, बल्कि इसके विपरीत इस अंधानुकरण से उन्होंने वस्तुतः अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व को कमजोर करने में ही मदद की है।

अगर अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व को स्वीकार करने का मतलब उसका अंधतापूर्वक अनुकरण समझा जाये, तो यह कदापि वांछनीय नहीं है। जहां तक मैं समझता हूं, मार्क्सवाद के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन को मानकर चलने का मतलब यह कतई नहीं है कि उसका अंधतापूर्वक अनुकरण किया जाये, बल्कि इसका मतलब

यह है एक ही मूल उद्देश्य से सामाजिक प्रगति, मुक्ति तथा क्रांति के लिए लड़ते हुए आपस में एक-दूसरे के साथ द्वन्द्वात्मक संबंध अर्थात एकता-संघर्ष-एकता की नीति पर आधारित संबंध कायम करना। इस संबंध का स्वरूप द्वन्द्व-समन्वय की नीति द्वारा निर्धारित होगा। अर्थात यह एक ही साथ द्वन्द्व और समन्वय का संबंध होगा। वास्तव में इस द्वन्द्वात्मक संबंध को जीवंत कर पाने से ही केवल चिंतन और विचार के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व के विकास का पथ प्रशस्त हो सकता है। इससे न सिर्फ अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व की मदद होती है, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व के साथ हर मुल्क की कम्युनिस्ट पार्टी के द्वन्द्वात्मक संबंध का स्वरूप मिलनात्मक चरित्र का (non-antagonistic) होता है। अर्थात हमारे साझे दुश्मन, विश्व साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के विरुद्ध संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में वे एक-दूसरे के पूरक (mutually conducive) होते हैं। इससे विभिन्न मुल्कों के साम्यवादी आंदोलनों को सही पथ पर संचालित करने में कम्युनिस्ट पार्टियां सक्षम बनती हैं।

इस तरह एकताबद्ध होकर चलने में अर्थात द्वन्द्व-समन्वय की प्रक्रिया में समय-समय पर आपस में विभिन्न तरह के गंभीर मतांतर होने बिलकुल स्वाभाविक हैं। इसके लिए हमें एक बात हमेशा ध्यान में रखनी जरूरी है, वह यह कि विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के बीच आपस में अथवा अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व के साथ अलग-अलग मुल्कों की कम्युनिस्ट पार्टियों के ऐसे जो भी मतभेद होंगे, उनके विषयों को लेकर अगर अलग-अलग विचार किया जाये, तो अक्सर हम इन द्वन्द्वों (contradictions) को विरोधात्मक प्रकृति के (antagonistic) ही पायेंगे। लेकिन बृहत्तर अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन के क्षेत्र में आपस में मान्य बुनियादी उसूलों (accepted fundamentals) के परिप्रेक्ष्य में विचार करने से यह देखने को मिलेगा कि ये विरोधात्मक द्वन्द्व फौरन ही मिलनात्मक द्वन्द्व में बदल जाते हैं। इसलिए साम्राज्यवाद-पूंजीवाद के विरुद्ध लड़ाई के मामले में साम्यवादी खेमे की एकता और एकताबद्ध प्रयास को जारी रखने के लिए आपस में तीव्र सैद्धांतिक संघर्ष चलाते वक्त भी एकता को बनाये रखना निहायत जरूरी उत्तरदायित्व हो जाता है।

द्वन्द्व-समन्वय की यह प्रक्रिया अर्थात एक ही साथ सिद्धांत के मामले में समझौतारहित संघर्ष चलाते जाने और साझे दुश्मन के खिलाफ लड़ाई में आपसी एकता को भी नष्ट नहीं होने देने की नीति पर सही ढंग से अमल कर पाने से एक ओर अपने-अपने मुल्क के साम्यवादी आंदोलन अपार शक्ति के साथ आगे बढ़ते हैं, साथ ही दूसरी ओर इस द्वन्द्व-समन्वय के माध्यम से प्राप्त नये-नये अनुभवों से समृद्ध होकर मार्क्सवाद का आम सैद्धांतिक भण्डार भी लगातार विकसित होता रहता है। इस तरीके से मार्क्सवाद के अमल के जरिये उसके क्रांतिकारी सिद्धांतों की समझ को लगातार विस्तृत (elaborate) एवं ठोस (concretise) करते हुए उसे विकसित-समृद्ध न कर पाने से किसी भी मुल्क में सही मायने में क्रांति को संगठित कर पाना संभव नहीं है। इसलिए देखिएगा, लेनिन, माओ त्से-तुंग आदि जिन्होंने भी स्वयं क्रांति को संगठित किया, उन्होंने मार्क्सवाद के ज्ञान-भण्डार में कुछ नये संयोजन किये। ऐसा किये बिना किसी देश में क्रांति सफल करना संभव नहीं है। अपने देश में जब मैं किसी को यह कहते सुनता हूं कि यहां चीन के पथ पर या रूस के पथ पर क्रांति होगी तो मैं कहता हूं कि यहां चीन या रूस से हमें एक रास्ते का इशारा मिलता है। इससे जरा भी अधिक मतलब लगाने की कोशिश करने से हम अंधता (blindness) के शिकार हो जायेंगे और अंधता जितनी ज्यादा होगी, उग्रता तथा एकतरफा झुकाव भी उतने ही बढ़ते जायेंगे। आज हम ठीक यही होता देख रहे हैं।

अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व के साथ द्वन्द्वात्मक संबंध कायम करने में भारत की तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टियों की विफलता

तो मैं कह रहा था, हमारे देश में वर्तमान में तीन टुकड़ों में बंटी हुई कम्युनिस्ट पार्टी नामवाली यह जो पार्टी है, इसने अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व के साथ संबंध के क्षेत्र में, कभी भी द्वन्द्वात्मक संबंध की इस साम्यवादी पद्धति पर अमल नहीं किया। इस पार्टी ने अपने जन्म के बाद से ही नेतृत्वकारी (leading) कम्युनिस्ट पार्टी की दुहाई देकर सोवियत नेतृत्व का तथा सोवियत एवं चीन के बीच विरोध पैदा होने के बाद से स्वयं भी दो टुकड़ों में बंटकर एक दल सोवियत नेतृत्व का तो दूसरा दल चीनी नेतृत्व का अंधतापूर्वक अनुसरण करता आया है। चीन और

सोवियत नेतृत्व के बीच कौन सही है और कौन गलत, यह प्रश्न यहां बिल्कुल गौण और अप्रासंगिक है। इन पार्टियों के सिद्धांतों का अगर ठीक से विश्लेषण करके देखें तो हमारी बात की सच्चाई आप आसानी से समझ सकते हैं।

हालांकि यह सच है कि फिलहाल सीपीआई (एम) को कुछ अजीबो-गरीब घटनावश सोवियत और चीन इन दोनों पक्षों की मान्यता (official recognition) से हाथ धोना पड़ा है। क्योंकि सीपीआई (एम) से नक्सलपंथी नेताओं और कार्यकर्ताओं के अलग हो जाने के बाद से चीन की कम्युनिस्ट पार्टी सीपीआई (एम) को कम्युनिस्ट पार्टी नहीं मान रही है। सीपीआई को वह पहले से ही नहीं मानती थी। दूसरी ओर सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा बाकायदा मान्यता प्राप्त पार्टी सीपीआई है और जब तक सीपीआई की यह मान्यता बरकरार है, तब तक सीपीआई (एम) को भी साथ ही साथ मान्यता कैसे मिल सकती है? हालांकि अभी कोसीगिन (रूस के तत्कालीन प्रधानमंत्री) के दिल्ली आने पर उनके साथ सीपीआई (एम) के नेताओं की हुई बातचीत और सोवियत यूनियन द्वारा सीपीआई (एम) के नेता रणदिवे को आमंत्रण आदि घटनाओं पर गौर करने से तथा कोसीगिन के प्रयासों के बारे में विभिन्न सूत्रों से जो खबरें मिल रही हैं, उन्हें ध्यान में रखते हुए अनुमान लगाया जा सकता है कि सीपीआई (एम) के प्रति सोवियत यूनियन का रुख अब धीरे-धीरे कुछ मुलायम होता जा रहा है। लेकिन दिक्कत यह है कि सीपीआई से टूटकर अलग होने के समय सीपीआई (एम) पार्टी ने संशोधनवाद-विरोधी नारों से अपनी पार्टी-पांतों के आम सदस्यों (rank and file) को इस तरह से उकसाया था कि आज खुद चाहते हुए भी पार्टी-पांतों के आम सदस्यों के रुख को सोवियत की ओर मोड़ना उसके लिए तुरंत संभव नहीं हो पा रहा है। इसलिए अभी उसे अपनी पुरानी लाइन को ही जारी रखना पड़ रहा है। हालांकि बहुत बारीकी के साथ (subtle way) वह उस पुरानी लाइन को बदलने की कोशिश कर रही है–इतनी बारीकी से कि अगर सैद्धांतिक बातों को पकड़ पाने की योग्यता बहुत ऊंचे स्तर की न हो, तो मामूली दर्जे के किसी कार्यकर्ता के लिए इसे समझ पाना मुश्किल है। संशोधनवादी डांगे गुट के विरुद्ध क्रांतिकारी लफ्फाजियों का इस्तेमाल

करते हुए ही चतुराई के साथ यह अपनी लाइन को पलटती जा रही है–स्वयं भी संशोधनवादी बनती जा रही है। आजकल के कॉमरेडों और कम्युनिज्म समर्थक जनसाधारण की चेतना का स्तर जिस जगह है, उसके कारण लोग यह पकड़ ही नहीं सकते कि किस तरह क्रांतिकारी लफ्फाजी और जुझारूपन का दिखावा करते हुए दरअसल यह पार्टी खुद एक संशोधनवादी पार्टी में तब्दील हो चुकी है।

अगर आप आंखें खोलकर देखने की कोशिश करें, तो आपको साफ नजर आयेगा कि हाल ही में यह पार्टी यूरोप की, खासकर उन पार्टियों के साथ ही नाता जोड़ने की जी-तोड़ कोशिश कर रही है, जो लोग चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थक तो हैं ही नहीं, बल्कि पीकिंग लाइन के घोर विरोधी हैं। एक ओर यह पार्टी संशोधनवाद के विरुद्ध लड़ने का दावा करती है और दूसरी ओर रोमानिया की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ खास दोस्ती का नाता जोड़ रही है–रोमानिया की उस कम्युनिस्ट पार्टी के साथ जो संशोधनवादिता में सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी से भी ज्यादा दक्षिणपंथी है, जो अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट भाईचारे के किसी भी ताल्लुक को, यहां तक कि एक आम बुनियादी लाइन (general fundamental line) के तय किये जाने को ही दूसरों के अंदरूनी मामले में हस्तक्षेप की संज्ञा देती है और उसका विरोध करती है, जो अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व के किसी केन्द्र (international centre of leadership) के गठन की नीति तक की भी विरोधी है। जो उग्र स्वातंत्र्य की भावना-धारणा (conception of ultra-independence) से प्रभावित है और संशोधनवादी के तौर पर जो सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी से भी कहीं ज्यादा दक्षिणपंथी है, उस रोमानियाई कम्युनिस्ट पार्टी के साथ वे बिरादराना रिश्ता कायम कर रहे हैं। ये दोनों, आज एक-दूसरे की खूब प्रशंसा कर रही हैं।

सीधे सोवियत संघ या चीन, दोनों में से किसी से भी सटने का मौका न पाकर आज यह पार्टी एक ऐसा रास्ता अख्तियार करने लगी है कि मानो यह निष्पक्ष है। बात असल में यह है कि किसी बुनियादी मतभेद की वजह से नहीं, बल्कि नेतृत्व के झगड़े और गुटबाजी के चलते सीपीआई से अलग होने के फलस्वरूप ये लोग सोवियत संघ की मान्यता नहीं पा रहे हैं। फिर चीन के रास्ते पर चलने की भी योग्यता उनमें नहीं है। क्योंकि मुंह से जितनी भी गरम-गरम क्रांतिकारी

बातें क्यों न किया करें, इस पार्टी का भी असल स्वरूप पूरी तरह संशोधनवादी ही है। मेरे कहने का मतलब यह नहीं समझना चाहिए कि इस मुल्क में आज जो लोग अंधतापूर्वक चीन के रास्ते चलने की बातें कर रहे हैं, उन्हें मैं सही क्रांतिकारी समझ रहा हूं। उनके बारे में चर्चा मैं आगे करूंगा। तो, यही वजह है कि सीपीआई (एम) अभी चीन और सोवियत संघ से अलग एक बीच का रास्ता अख्तियार किए हुए है। अर्थात वे अब तटस्थ हैं। क्या इस 'तटस्थ' शब्द की झलक उनके आचरण में दिख रही है? असल में वे लोग अभी अपने को एक स्वतंत्र राष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टी के ढंग की पार्टी में ढालने की कोशिश कर रहे हैं। हालांकि आज अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व की इन दो धाराओं में से किसी की भी मान्यता न पाने के फलस्वरूप ही ये लोग 'राष्ट्रीय' कम्युनिस्ट पार्टी का रूप अपनाते जा रहे हैं। लेकिन ऐसा सोचना गलत होगा कि कल अगर उसे किसी की मान्यता मिल जाती है, तो उसका यह राष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टी का चरित्र बदल जायेगा।

आज भी हमारे देश में अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व को जो स्थान प्राप्त है, उस गौरव से फायदा उठाने के लिए इन्हें अंतर्राष्ट्रीय मान्यता की ओर जाना ही होगा और वे उसके लिए काफी कोशिश कर भी रहे हैं। लेकिन फिर भी आज इस बात में शक की कोई गुंजाइश नहीं रह गयी है कि ये निश्चित रूप से एक राष्ट्रीय किस्म की कम्युनिस्ट पार्टी में अपने को ढालने की ओर ही बढ़ रहे हैं। सीपीआई अंतर्राष्ट्रीयतावाद की चाहे जितनी भी बातें क्यों न करे, उसका चिंतन और मानसिक गठन हर पहलू से राष्ट्रवादी ढंग का हो चुका है। अभी सीपीआई (एम) भी उसी ओर जा रही है। अर्थात राष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टीनुमा एक पार्टी बनने की दिशा में जा रही है। निहित स्वार्थ वालों और जोतदारों के खिलाफ लड़ाई की जितनी भी बड़ी-बड़ी बातें वे लोग क्यों न करें, मगर उनके प्रति भारतीय शासक वर्ग का रुख, हाल ही में ब्रिटिश पूंजीपतियों के मुखपत्र *'दि गार्डियन'* द्वारा इस पार्टी के नेता ज्योति बसु की तारीफ, केरल में जब इस पार्टी की सरकार थी, तब उस सरकार के प्रति बिड़ला का रुख और आज पश्चिम बंगाल में इस पार्टी के हाथ में श्रम-विभाग रहने के बावजूद इसके प्रति बड़े-बड़े पूंजीपतियों का नरम रुख है, जबकि पिछली बार की संयुक्त मोर्चा

सरकार के प्रति उनका रुख बेहद गरम था, आज नौकरशाहों व बड़े-बड़े पूंजीपति घरानों, खासकर बिड़ला द्वारा मौजूदा सरकार के गुणगान आदि को आंखें खोलकर देखने से किसी भी ईमानदार आदमी और खासकर मार्क्सवाद-लेनिनवाद से लैस किसी भी सचेत कार्यकर्ता को यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि सीपीआई (एम) आज वाकई किस तरह की कम्युनिस्ट पार्टी बनने की ओर जा रही है।

हां, तो मैं कह रहा था कि पहले की अविभाजित कम्युनिस्ट पार्टी और बाद में तीन हिस्सों में बंट जाने के बाद इन तीनों के ही इतिहास पर गौर करने से आप यह देखेंगे कि राजनैतिक या आर्थिक मामलों में आज तक इन्होंने जब कभी भी कोई निर्णय लिया, अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व की दुहाई देकर ही लिया। हमेशा इन्होंने या तो सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी, नहीं तो चीन की कम्युनिस्ट पार्टी और नहीं तो किसी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा लिये गये आम-नीति (general line) संबंधी फैसले की हू-ब-हू नकल उतारकर उससे भारतीय सामाजिक स्थिति की व्याख्या करने की कोशिश की। इस सिलसिले में मैं यहां एक और विषय पर चर्चा कर लेना चाहता हूं, जिस पर भी इन्होंने बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया। वह यह कि विभिन्न मुल्कों की कम्युनिस्ट पार्टियों के विचारों और अनुभवों के आदान-प्रदान तथा द्वन्द्व-संघर्ष के माध्यम से जो अंतर्राष्ट्रीय आम-नीति बनती है, उसे उस विशेष अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में बुनियादी आम-नीति समझना होगा। उस अंतर्राष्ट्रीय आम-नीति की हू-ब-हू नकल उतारकर किसी मुल्क में क्रांति नहीं हो सकती। क्योंकि, उस आम-नीति को किसी खास मुल्क में अमल में लाने की कोशिश करने से ही उस खास मुल्क की ठोस परिस्थिति के साथ आम-नीति का कुछ अंतर दिखाई पड़ेगा—अर्थात द्वन्द्व दिखाई देगा। इस द्वन्द्व का ठीक-ठीक समाधान कर पाने से ही किसी मुल्क की खास परिस्थिति के सही विश्लेषण के आधार पर उस देश की क्रांति की खास लाइन को तैयार किया जा सकता है, और वही होगी उस खास क्रांति की खास लाइन।

यहां तक कि इस बुनियादी आम लाइन के सर्वसम्मति से तय होने पर भी आम (general) के साथ खास (particular) का यह जो द्वन्द्व दिखाई देता है, उस द्वन्द्व का चरित्र परस्पर एक-दूसरे का पूरक

(mutually conducive to each other) होगा। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि इन दोनों के बीच द्वन्द्व-संघर्ष है और हमेशा रहेगा। सामान्य के साथ विशेष के इस द्वन्द्व-संघात के चरित्र को हमारे देश की कम्युनिस्ट नामधारी पहले अविभाजित और अभी तीन टुकड़ों में बंटी हुई यह पार्टी पहले भी नहीं पकड़ पायी और आज भी नहीं पकड़ पा रही है। ये लोग अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व को मानकर चलने का मतलब उसकी नकल करना या अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व की आम लाइन को ही थोड़ा जोड़-तोड़कर या अभिव्यक्ति में हेर-फेर कर अपने मुल्क की खास परिस्थिति के मत्थे मढ़ देना समझते हैं। राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के साथ राष्ट्रीय जनतांत्रिक फ्रण्ट बनाकर राष्ट्रीय जनतांत्रिक आंदोलन (जो असल में बुर्जुआ जनतांत्रिक धारा को ही प्रकट करता है) की प्रक्रिया से जनता की जनवादी क्रांति को सफलीभूत करने का सीपीआई का सिद्धांत और सीधे-सीधे साफ-साफ जनता की जनवादी क्रांति करने का सीपीआई (एम) का सिद्धांत या फिर भारतीय राजसत्ता को अर्द्ध-सामंती, अर्द्ध-औपनिवेशिक बताकर गांवों में आजाद इलाके बनाते हुए शहर को घेर लेने के नक्सलपंथियों के सिद्धांत का अगर आप विश्लेषण करें, तो यही पायेंगे कि इन तीनों पार्टियों ने भारत की समाज व्यवस्था की वास्तविक हालत को मानने से इनकार करके या तो किसी अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट सम्मेलन या बैठक में ली गयी आम लाइन का या सोवियत नेतृत्व या चीनी नेतृत्व द्वारा दी गयी व्याख्या का अंधे की तरह हू-ब-हू अनुकरण किया और इस तरह भारत की वास्तविक परिस्थिति के मत्थे एक सिद्धांत को मढ़कर बाद में उसके पक्ष में दलील और मनगढ़ंत माल-मसाला जुटाने का प्रयास किया। इन लोगों ने कभी भी अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व को भारत की वास्तविक परिस्थिति से वाकिफ कराने के लिए या अपने विश्लेषण से अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व के विश्लेषण को प्रभावित करने की कोई कोशिश नहीं की। उल्टे, इन लोगों ने इस देश की परिस्थिति और आंदोलन के बारे में गलत चित्र और अतिरंजित विवरण देकर हमेशा ही अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व को गलत रास्ते पर चल देने में मदद की है, जैसा कि नक्सलपंथी अपने वर्तमान किसान आंदोलन का अतिरंजित विवरण देकर चीनी नेतृत्व को गलत रास्ते पर चलने में मदद कर रहे हैं।

इस अंधानुकरण के चलते भारत के कम्युनिस्ट आंदोलन को नुकसान हुआ है, सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि इन्होंने एक ओर इसके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व को बार-बार इस मुल्क के बारे में गलत निष्कर्ष पर पहुंचने में सहायता की, दूसरी ओर कम्युनिज्म को, जिसे एक दिन इस मुल्क के जनसाधारण एक महान विचारधारा के रूप में बेहद श्रद्धा की नजर से देखते थे, इज्जत और कद्र करते थे, इन्होंने अपने इन गलत आचरणों से जनता की निगाह में बहुत नीचे गिरा दिया। दूसरी त्रुटियों के बारे में चर्चा मैं बाद में करूंगा। अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व, जिसके प्रति इस देश के तमाम शोषित जनसाधारण तथा बुद्धिजीवी लोग भी काफी श्रद्धा रखते थे, इन लोगों के इस आचरण के फलस्वरूप आज इस मुल्क में उसके प्रति आदर की भावना खत्म होकर धीरे-धीरे घृणा की भावना पैदा होती जा रही है। इसके लिए इन्हीं नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियों का अंधतापूर्ण एवं चाटुकारितापूर्ण आचरण ही पूरी तरह जिम्मेदार है, इसमें कोई शक नहीं।

हालांकि, बुद्धिजीवियों का जिक्र करने से ये लोग तुरंत जवाब देंगे–'वे तो पेटी बुर्जुआ हैं, वे कुछ भी कहें इससे क्या आता-जाता है? इस देश के मजदूर-किसान तो आज भी अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेताओं को श्रद्धा की दृष्टि से ही देखते हैं।' मैं इन्हें कहता हूं, ठीक से उन्हें प्रस्तुत कर पाने से मजदूर-किसान उन्हें श्रद्धा की निगाह से देखेंगे, यह बात सही है। लेकिन इस देश में अब तक अधिकतर मजदूर-किसान तो यही नहीं जान पाये हैं कि कौन मार्क्स, कौन एंगेल्स, कौन लेनिन और कौन माओ त्से-तुंग थे। आज भी इस देश के बुद्धिजीवी तबके के लोग ही, शहरों और गांवों के शिक्षित निम्न मध्यम दर्जे के हम साधारण लोग ही विभिन्न जगह कम्युनिस्ट बनते हैं। मजदूर-किसानों का सच्चा राजनैतिक क्रांतिकारी संगठन एवं नेतृत्व क्या आज भी इस देश में गठित हो सका है? गठन का प्रयास मात्र हो रहा है। तब इस तरह बोलने का अर्थ तो सही प्रश्न की ओर से आंखें बन्द कर लेना है। इसलिए, शहरों एवं गांवों के शिक्षित बुद्धिजीवियों की निगाह में, जो निम्न-मध्यम दर्जे एवं पेटी बुर्जुआ वर्ग से आते हैं, अगर अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेताओं का सम्मानपूर्ण स्थान खत्म हो गया हो, तो मैं कहूंगा, यह इस वक्त का अत्यंत गंभीर विचारणीय विषय समझा जाये, जिसकी सारी जिम्मेदारी इन चापलूसों पर ही होगी।

सही क्रांतिकारी पार्टी के बिना क्रांति सफल नहीं हो सकती

इसलिए, कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया नामक इस पार्टी के जन्म के बाद से ही इसके संघर्षों के इतिहास, अर्थात उन तमाम संघर्षों को संचालित करने की इसकी कार्य पद्धति और नजरिये की समीक्षा करके और इसके द्वारा विभिन्न अवसरों पर निर्धारित क्रांति की रणनीति व रणकौशल और मुल्क की मूल राजनीतिक स्थिति के विश्लेषण के साथ भारतीय राजसत्ता के चरित्र निर्धारण की इस पार्टी के द्वारा जो कोशिश की गयी है अर्थात क्रांति के मूल सिद्धांत के निर्धारण की जो कोशिश की गयी है, उसका और इसके नेताओं व कार्यकर्ताओं द्वारा उनके रोजमर्रा के व्यवहार में प्रतिबिंबित नैतिक-सांस्कृतिक स्तर और जीवन के प्रत्येक पहलू के बारे में इनके नजरिये का, जिसके बारे में चर्चा मैं बाद में करूंगा, इन सबका बारीकी से व्यापक विश्लेषण करने के बाद और पूरी तरह से इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद कि अपने 'कम्युनिस्ट' साइनबोर्ड के बावजूद यह एक पेटी बुर्जुआ पार्टी से अधिक कुछ नहीं है, हमने अपनी पार्टी सोशलिस्ट यूनिटी सेंटर ऑफ इंडिया का भारत के सर्वहारा की सच्ची मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी के रूप में निर्माण किया है। क्योंकि मार्क्सवाद के अनुसार हम जानते हैं कि पार्टी केवल कुछ व्यक्तियों का समूह ही नहीं होती है। वर्ग-विभाजित समाज में कोई भी राजनैतिक पार्टी किसी न किसी वर्ग की पार्टी होती है। अर्थात उत्पादन के विकास के एक खास ऐतिहासिक स्तर पर एक खास मुल्क में जो विभिन्न वर्ग मौजूद रहते हैं, उनमें से किसी न किसी एक वर्ग की राजनैतिक, आर्थिक, वैचारिक और नैतिक आशा-आकांक्षाओं को चरितार्थ करने का राजनैतिक अस्त्र ही है उस वर्ग की राजनैतिक पार्टी। इसलिए पार्टी कहने से मार्क्सवादी लोग किसी न किसी वर्ग की पार्टी समझते हैं, जो एक खास वर्गगत विश्व-दृष्टिकोण (definite class world outlook) एवं समस्याओं के विश्लेषण और समाधान के मामले में एक खास वर्ग की चिंतन-प्रक्रिया तथा पद्धति (class methodological approach to problems) के आधार पर ही गठित होती है। इस विश्व-दृष्टिकोण एवं वर्ग चिंतन प्रक्रिया व पद्धति के संबंध में नेता-कार्यकर्ता सचेत रहें या न रहें, ये पार्टी को एवं पार्टी के मूल विचार-विश्लेषण को तथा पार्टी के नेता-कार्यकर्ताओं के जीवन की हर

समस्या के मामले में उनके दैनिक आचरण के रुचिगत व सांस्कृतिक क्षेत्र को भी प्रभावित करते जाते हैं।

इस प्रसंग में एक और बात आप लोगों को हमेशा याद रखनी होगी, वह यह कि एक मुल्क में मजदूर वर्ग की सच्ची क्रांतिकारी पार्टी या मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी सिर्फ एक ही हो सकती है। मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी एक से अधिक नहीं हो सकती। एक देश के दो भू-भागों में अगर दो सच्ची कम्युनिस्ट पार्टियां गठित हो भी जायें, तो चूंकि उन दोनों के बुनियादी दृष्टिकोण, विचार-विश्लेषण पद्धति व उद्देश्य एक ही हैं, इसलिए कालांतर में वे दोनों मिलकर एक ही पार्टी बन जायेंगी। कम्युनिस्ट पार्टी के नाम से देश में एक पार्टी रहने के बावजूद साम्यवादी विचारधारा पर आधारित दूसरी पार्टी का गठन केवल तभी सही माना जा सकता है, जब इतिहास और द्वन्द्वात्मक तर्क विज्ञान की कसौटी पर कस कर यह देखा गया हो कि कम्युनिस्ट पार्टी नामधारी वह पार्टी मजदूर वर्ग के नाम की आड़ में दरअसल बुर्जुआ या पेटी बुर्जुआ वर्ग-स्वार्थ की रक्षा करती रही है। इस तरह भारत की आठ-नौ पार्टियां, जो अपने को मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी कहती हैं, मार्क्सवादी-लेनिनवादी होने का दावा करती हैं—या तो इन में से कोई भी सही कम्युनिस्ट पार्टी नहीं है, या इन में से सिर्फ कोई एक ही सही कम्युनिस्ट पार्टी है। अगर इनमें से कोई एक ही पार्टी मजदूर वर्ग की सच्ची क्रांतिकारी पार्टी है, तो हमें इतिहास और सही वैज्ञानिक विचार-विश्लेषण के सहारे उसे पहचानना होगा।

और अगर सही वैज्ञानिक विचार-विश्लेषण से यह जाहिर होता है कि अभी तक देश में सच्ची मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी गठित ही नहीं हुई है, तो वैसी हालत में जो लोग क्रांति करना चाहते हैं; जो लोग मौजूदा आर्थिक शोषण, राजनैतिक उत्पीड़न, सामाजिक अन्याय एवं सांस्कृतिक संकट से मुक्ति पाना चाहते हैं—शोषित वर्ग और देश को मुक्त कराना चाहते हैं—उन्हें सही वैज्ञानिक पद्धति अपनाते हुए एक सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी का निर्माण करना होगा, क्योंकि मौजूदा हालात में मजदूर वर्ग की मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्रांतिकारी पार्टी के बिना किसी भी देश में क्रांति की तैयारी नहीं की जा सकती; उसे कामयाबी की ओर नहीं ले जाया जा सकता तथा क्रांति के बाद उसे अंत तक

सहेज कर वर्ग-विहीन साम्यवादी समाज का निर्माण भी नहीं किया जा सकता। यही वजह है कि भारत की शोषित जनता की मुक्ति के लिए मौजूदा जो शोषण पर आधारित सामाजिक व्यवस्था हमारे सीने पर पत्थर की तरह जमी हुई है, हमारे विकास के रास्ते को, समाज की निर्बाध प्रगति के पथ को ही बन्द कर बैठी है, उसे तोड़कर समाज के बेरोकटोक विकास के पथ को खोलने के लिए क्रांति हमें चाहिए ही एवं इस क्रांति के लिए एक क्रांतिकारी पार्टी भी हमें चाहिए ही। इसलिए चाहे यह काम कितना ही कठिन क्यों न हो, तथाकथित क्रांतिकारी सिद्धांतों के हजारों तरह के भ्रमजाल के अंदर से सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी कौन-सी है, उसका पता लगाना ही होगा और हमें उसे ढूंढ़ निकालना ही होगा।

क्रांतिकारी पार्टी को जांचने-परखने की सही कसौटी

कोई पार्टी मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी है या नहीं, इस जटिल विषय को जांचने-परखने की कसौटी क्या होगी? क्या पार्टी के नेताओं की गरम-गरम इंकलाबी बातों से? तब तो मजदूर वर्ग की सच्ची पार्टी कभी पहचानी ही नहीं जा सकेगी। क्योंकि गरम-गरम क्रांतिकारी बोली बोलने में हममें से कोई किसी से पीछे नहीं है! लेनिन ने हमें सिखाया–''क्रांतिकारी सिद्धांत के बिना क्रांति नहीं हो सकती'' और इसलिए क्रांतिकारी सिद्धांत के बिना क्रांतिकारी पार्टी भी नहीं बन सकती। क्रांतिकारी सिद्धांत कहने से लेनिन का मतलब किसी पार्टी के केवल राजनैतिक कार्यक्रम (programme) एवं नीतियों (policies) से नहीं था, बल्कि 'क्रांतिकारी सिद्धांत' शब्द से उन्होंने पार्टी के केन्द्रीय नेतृत्व द्वारा जीवन के हरेक पहलू से संबंधित ज्ञान-विज्ञान की धारणाओं को द्वन्द्वात्मक पद्धति से संयोजित करते हुए ज्ञान के एक पूरे परिमण्डल (epistemological category) को ही समझाना चाहा।

तो फिर किसी पार्टी को विचारने के लिए पहले उस पार्टी के क्रांतिकारी राजनैतिक सिद्धांत पर विचार करके देखना होगा कि जिस राजनैतिक सिद्धांत को वे क्रांतिकारी कहकर प्रचारित कर रहे हैं, वह वाकई वैसा है या नहीं, अर्थात हमारी सामाजिक व्यवस्था के अंदर आज क्रांति की जो जटिल प्रक्रिया काम कर रही है–उनके सिद्धांत में उसी

की वास्तविक एवं सही परछाई है या नहीं। दूसरा यह देखना होगा कि अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति के संबंध में उस पार्टी का अपना कोई स्वतंत्र विश्लेषण है या नहीं–अगर है तो देखना होगा कि वह मार्क्सवादी विश्लेषण है या और कुछ। तीसरा इसके साथ-साथ यह भी देखना होगा कि प्रत्येक घटना के विचार-विश्लेषण के मामले में वह पार्टी कौन-सी चिंतन पद्धति (methodological approach) अपनाती है एवं पार्टी की मूल रणनीति, प्लान, प्रोग्राम और संघर्ष चलाने का कौशल किस वर्ग के दृष्टिकोण से संबंधित है। चौथा यह देखना होगा कि उस पार्टी के नेता और कार्यकर्ता अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में, आचरण-व्यवहार व आदत में कौन-सी वर्ग-संस्कृति को प्रतिफलित कर रहे हैं। यहां याद रखना होगा कि क्रांतिकारियों के बीच आपस में तथा जनता के साथ आचरण में कट्टरता और तर्कहीन आचरण को बढ़ावा देना, विभिन्न तरह के बुर्जुआ कुसंस्कारों के प्रभाव–अंधापन, जिद, अनुशासनहीनता, अहंकारिता (ego centricism), झूठ बोलने की आदत बनी हुई है या नहीं। ये सब रहने से समझना होगा कि पार्टी के नेताओं और कार्यकर्ताओं पर अभी बुर्जुआ तथा सामंती संस्कृति का प्रभाव पूरी तरह मौजूद है।

इस तरह पार्टी के चरित्र की परख के लिए जहां पार्टी के क्रांतिकारी सिद्धांत को मार्क्सवादी-लेनिनवादी द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण के अनुसार पहले जांचना होगा, वहीं साथ-साथ उस पार्टी द्वारा अपनाये जाने वाली चिंतन-विचार पद्धति एवं पार्टी के नेताओं और कार्यकर्ताओं के दैनिक आचरण में जिस सांस्कृतिक स्तर की झलक मिलती है, उस पर भी विचार करते हुए पार्टी के बारे में सही नतीजे पर पहुंचना होगा। क्योंकि याद रखें, बुर्जुआ मानवतावाद से उन्नततर सांस्कृतिक स्तर अर्थात सर्वहारा सांस्कृतिक स्तर हासिल किये बगैर क्रांतिकारी सिद्धांत पर पकड़ तथा उसका प्रयोग कतई सही नहीं हो सकता। जिन्हें मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्तालिन और माओ त्से-तुंग की बुनियादी विचारधारा की जानकारी है, वे हमारी इस बात को समझ सकेंगे। **यहां एक और बात याद रखनी चाहिए, वह यह कि दैनिक जीवन में प्रयोग के बिना मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संबंध में केवल किताबी ज्ञान और मार्क्सवाद के सिद्धांत के साथ संयोजन के बिना केवल शोषित जनसाधारण के**

आंदोलनों के दौरान प्राप्त ज्ञान–ये दोनों ही मार्क्सवाद–लेनिनवाद के बारे में अधूरे ज्ञान मात्र हैं। सभी मार्क्सवादी–लेनिनवादी जानते हैं कि द्वन्द्वात्मक पद्धति से इन दोनों को संयोजित कर पाने से ही मार्क्सवाद–लेनिनवाद के बारे में एक सम्पूर्ण सैद्धांतिक समझ हासिल करना संभव है। संघर्षों के जरिये उन्नततर सांस्कृतिक स्तर हासिल किये बिना, इन दोनों तरह के अधूरे ज्ञान को द्वन्द्वात्मक पद्धति से सही तौर पर संयोजित करते हुए चौकस ज्ञान प्राप्त करना अर्थात सिद्धांत–तत्व विचार की योग्यता हासिल करना नामुमकिन है। इन सारे पहलुओं को ध्यान में रखते हुए ही हमें पार्टी के बारे में विचार करने के कठिन कार्य को करना होगा।

इसके अलावा, पार्टी के बारे में विचार करते समय एक और महत्वपूर्ण विषय को भी ध्यान में रखना होगा। देखना होगा कि किस पद्धति से–किस तरह के संघर्षों के माध्यम से वह पार्टी गठित हुई है और नेतृत्व संबंधी उसकी धारणा कैसी है? क्या वह पेटी–बुर्जुआ पार्टियों की जैसी एक औपचारिक जनतांत्रिक (formal democratic) नेतृत्व की धारणा है या जनवादी केन्द्रीकरण अर्थात केन्द्रीयता (centralism) और सर्वहारा जनतंत्र (proletarian democracy) के मिश्रण (fusion) के जरिये विकसित होने वाले सामूहिक नेतृत्व की धारणा है। अर्थात मैं कहना चाह रहा हूं कि चूंकि बुर्जुआ क्रांति उत्पादन पर व्यक्तिगत मालिकाने के आधार पर उत्पादिका शक्ति, उत्पादन–पद्धति और उत्पादन में क्रांतिकारी परिवर्तन एवं एक मायने में व्यक्ति के विकास और व्यक्ति के अधिकार स्थापित करने की क्रांति है, इसलिए बुर्जुआ जनतंत्र में चाहे वह कितना भी आदर्श जनतांत्रिक रूप का क्यों न हो, असल में उसके माध्यम से व्यक्तिगत नेतृत्व ही काम करता है। इस जनतांत्रिक प्रणाली में व्यक्ति ही मूल केन्द्र बिंदु होता है और भले ही इस संबंध में सचेत समझ न रहे, पर वास्तविक तौर पर एक या एकाधिक व्यक्तियों को केन्द्र करके ही इस जनतांत्रिक संघर्ष की प्रक्रिया का निर्माण होता है। इस तरह बुर्जुआ जनतंत्र में जनतंत्र के नाम पर असल में व्यक्ति नेतृत्व की स्थापना के फलस्वरूप इस जनतंत्र का चरित्र निहायत औपचारिक (formal) हो जाता है। दूसरी ओर, चूंकि समाजवादी क्रांति व्यक्तिगत मालिकाने की जगह सामाजिक मालिकाने

एवं उत्पादन पर मजदूर वर्ग के नेतृत्व में सामूहिक अधिकार स्थापित करने की क्रांति है, इसलिए मजदूर वर्ग के जनतंत्र में नेतृत्व का मतलब सामूहिक नेतृत्व है।

सामूहिक नेतृत्व क्या है?

सामूहिक नेतृत्व कहने से हम क्या समझते हैं? लेनिन के अनुसार पार्टी के तमाम सदस्यों का सामूहिक ज्ञान ही सामूहिक नेतृत्व होता है। अर्थात सिर्फ राजनैतिक या आर्थिक विषय ही नहीं, बल्कि जीवन की हरेक समस्या के बारे में पार्टी के तमाम सदस्यों के ज्ञान और अनुभवों के द्वन्द्व-समन्वय के जरिये जो सामूहिक ज्ञान पैदा होता है, उसी सामूहिक ज्ञान की अभिव्यक्ति का ठोस रूप (concrete form) सामूहिक नेतृत्व है। चीन की सांस्कृतिक क्रांति पर चर्चा के सिलसिले में मैंने इस पर जरा और व्याख्या करते हुए कहा था कि इस युग में कोई एक पार्टी अपनी अन्दरूनी जनतांत्रिक प्रक्रिया के जरिये व्यक्ति-नेतृत्व तथा व्यक्तिवाद को समाप्त करते हुए मात्र तभी इस सामूहिक नेतृत्व को जन्म दे सकती है जब उस पार्टी के सारे के सारे नेताओं एवं कार्यकर्ताओं के चिंतन-मनन और वैचारिक द्वन्द्व-समन्वय के माध्यम से पैदा होने वाला सामूहिक ज्ञान ठोस हुआ हो और वह व्यक्तिकृत हुआ हो (has been concretised and personified)। अर्थात एक नेता के माध्यम से यह सामूहिक नेतृत्व सर्वोत्तम रूप से व्यक्तिकृत हुआ हो, क्योंकि पार्टी के नेताओं और कार्यकर्ताओं के चिंतन-मनन और अनुभवों के द्वन्द्व-समन्वय से जो सामूहिक ज्ञान जन्म लेता है, उस सामूहिक ज्ञान या नेतृत्व अर्थात ऑथोरिटी (authority) संबंधी धारणा अमूर्त (abstract) कतई नहीं हो सकती। इसलिए सामूहिक नेतृत्व के उभरने का वास्तविक सबूत भी यही है कि पार्टी के किसी न किसी नेता के माध्यम से इस सामूहिक ज्ञान का सबसे अच्छा व्यक्तिकरण (personification) हुआ हो।

इस विषय की थोड़ी-सी और व्याख्या करने से शायद आपको समझने में सुविधा होगी। हम-आप जो चिंतन करते हैं, जिसे अक्सर हम व्यक्तिगत चिंतन कहा करते हैं, वह असल में है क्या? किसी व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक चिंतन का जिस प्रकार से व्यक्तिकरण होता

है, उस व्यक्तिकरण को ही हम व्यक्तिगत चिंतन कहते हैं। ठीक इसी तरह, पार्टी के नेताओं, कार्यकर्ताओं, आम सदस्यों, समर्थकों तथा मजदूर-वर्ग एवं जनसाधारण के विभिन्न संघर्षों के जरिये जो सामूहिक ज्ञान और अनुभव हासिल हो रहा है, उन संषर्षों से संबंधित हर व्यक्ति के अंदर उस ज्ञान तथा अनुभव का व्यक्तिकरण हो रहा है। लेकिन हम जानते हैं कि इस वस्तु जगत में कोई भी दो चीजें या घटनाएं (phenomena) हू-ब-हू एक नहीं हो सकतीं। ठीक इसी तरह, पार्टी के तमाम नेताओं और सदस्यों द्वारा सम्मिलित संघर्षों के दौरान प्राप्त सामूहिक ज्ञान और अनुभवों की समझदारी भी सभी में बिल्कुल एक-सी नहीं हो सकती। जिनके माध्यम से इस सामूहिक ज्ञान और अनुभव का सबसे अच्छा व्यक्तीकरण हो पाता है, वे ही सामूहिक नेतृत्व की अभिव्यक्ति के ठोस रूप (concrete form of expression) के तौर पर दिखाई देते हैं। रूस की बोल्शेविक पार्टी के नेता के रूप में लेनिन तथा चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के नेता के रूप में माओ त्से-तुंग का उदय वस्तुतः उन पार्टियों के सामूहिक नेतृत्व की ठोस अभिव्यक्ति के रूप में हुआ है। इस तरह सामूहिक ज्ञान का मतलब ही है वह ज्ञान जो पार्टी के नेताओं, कार्यकर्ताओं, सदस्यों, मजदूर-वर्ग एवं जनसाधारण के सम्मिलित संघर्षों के जरिये हासिल किया गया है तथा पार्टी की सर्वोच्च कमेटी के एक नेता के माध्यम से जिस सामूहिक ज्ञान का सबसे उत्तम रूप में व्यक्तिकरण हुआ है। पार्टी के सम्मिलित ज्ञान और अनुभव का जब इस प्रकार किसी एक नेता के माध्यम से सर्वोत्तम रूप में व्यक्तिकरण होता है, तभी नेतृत्व के क्रियाकलापों में व्यक्ति नेतृत्व तथा बुर्जुआ व्यक्तिवाद के प्रभाव को पूरी तरह खत्म करना संभव होता है। पार्टी के अंदर इस हद तक विकास होने से ही यह कहा जा सकता है कि पार्टी सर्वहारा जनतंत्र की नीति चालू करने तथा सामूहिक नेतृत्व को जन्म देने में सक्षम हुई है। जब तक पार्टी के नेतृत्व में जनवादी प्रक्रिया की यह स्थिति पैदा नहीं होती है, तब तक यह समझना होगा कि पार्टी के अंदर जनवादी केन्द्रीयता की नीति की दुहाई देकर सामूहिक नेतृत्व के नाम पर असलियत में औपचारिक जनतांत्रिक नेतृत्व (formal democratic leadership) ही काम कर रहा है।

यहां सामूहिक ज्ञान कहने से सिर्फ अर्थनीति या राजनीति संबंधी धारणाएं ही नहीं, बल्कि जीवन के सभी पहलुओं पर अर्थात कला, साहित्य से लेकर सामाजिक, पारिवारिक संबंध तक व्यक्तिगत विचार और आचरण-व्यवहार के सभी पहलुओं पर एक संयोजित और सर्वांगीण (co-ordinated and comprehensive) धारणा को समझा जाता है। पार्टी के नेताओं और कार्यकर्ताओं के जीवन के सभी क्षेत्रों में मार्क्सवाद-लेनिनवाद के आधार पर संघर्ष के दौरान यह जो सामूहिक ज्ञान पैदा होता है, यही दिग्दर्शक के रूप में हर एक कार्यकर्ता तथा नेता के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक–सभी विचारों व आचरण को नियंत्रित करता है। फिर इस सामूहिक ज्ञान से लैस होकर वास्तविक सामाजिक जीवन में उसे प्रयोग करने के समय व्यक्तिगत तौर पर प्रत्येक नेता और कार्यकर्ता के अनुभव के साथ सामूहिक ज्ञान का जो द्वन्द्व निरंतर पैदा हुआ करता है, उससे फिर यह सामूहिक ज्ञान और भी समृद्ध होता है तथा नेताओं एवं कार्यकर्ताओं के ज्ञान, अनुभव तथा रुचि का स्तर भी लगातार उन्नत होता रहता है।

याद रखना होगा कि पार्टी के अंदर नेताओं और कार्यकर्ताओं के आपसी संबंध इस प्रकार द्वन्द्वात्मक पद्धति से संचालित न होने पर उस संबंध का चरित्र यांत्रिक (mechanical) हो जाता है। अगर पार्टी के अंदर ऐसी स्थिति है, तो यह समझना होगा कि पार्टी में व्यक्तिवाद को खत्म करने की बात तो दूर, उसकी अन्दरूनी जनतांत्रिक प्रक्रिया में व्यक्तिवाद ही मुख्य विशेषता के रूप में काम कर रहा है और ऐसी हालत में समझना होगा कि वह पार्टी नाम से कम्युनिस्ट होने पर भी दरअसल एक बुर्जुआ या पेटी-बुर्जुआ पार्टी जैसी ही औपचारिक जनतंत्र एवं केन्द्रीयता की मिलावट के आधार पर यांत्रिक एवं अफसरशाही (ब्यूरोक्रेटिक) ढंग से केन्द्रित पार्टी में तब्दील हो चुकी है। इससे अनिवार्यत: पार्टी में उच्च स्तर पर ब्यूरोक्रेटिक नेतृत्व का जन्म होता है। फलत: इस हालत में पार्टी के नेताओं में क्रांतिकारी राजनैतिक चरित्र की बजाय ब्यूरोक्रेटिक मनोभावना पैदा होती है। सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि पार्टी के नेतागण बहुत निम्न कोटि के व्यक्तिवाद का शिकार हो जाते हैं और सारी पार्टी व्यवहारत: दो टुकड़ों में बंट जाती है। एक ओर रहता है वास्तविकता से संबंध रहित ब्यूरोक्रेटिक नेताओं और सिद्धांतकारों का धड़ा

और दूसरी ओर कार्यकर्ताओं के बीच अंधता और अंधतापूर्ण अनुगमन के अभ्यास के फलस्वरूप अंधेपन के साथ अनुगमन करने वाले ईमानदार, लगनशील (dedicated), निष्ठावान (sincere) लेकिन उग्र (fanatic) कार्यकर्ताओं का दूसरा धड़ा–नतीजा तो आप समझते ही होंगे। ऐसी हालत में पार्टी के अंदर सिद्धांत और व्यवहार (theory and practice) का पारस्परिक संबंध कायम नहीं रह सकता। सिद्धांत हो जाता है वास्तविकता से परे मनगढ़ंत (subjective) एवं अमूर्त (abstract) और व्यवहार (practice) हो जाता है अंधतापूर्ण एवं उग्रतापूर्ण किस्म का (blind and fanatic in nature)। अब सीपीआई, सीपीआई (एम) एवं नक्सलपंथियों के विभिन्न ग्रुपों की गतिविधियों, संगठन पद्धति, कार्यकर्ताओं की चेतना के स्तर आदि की ओर ध्यान देने से यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि इन सभी में आज ऐसी ही हालत मौजूद है।

जनवादी केन्द्रीयता–सामूहिक नेतृत्व के निर्माण का आधार

इस सामूहिक नेतृत्व को पैदा करने का संघर्ष ही मजदूर वर्ग की पार्टी संगठन के भीतरी ढांचे को जनवादी केन्द्रीयता (democratic centralism) के आधार पर गठित करने का बुनियादी संघर्ष है। जब तक पार्टी में ऐसा सामूहिक नेतृत्व पैदा नहीं होता, तब तक यह समझना होगा कि पार्टी का अंदरूनी ढांचा भी जनवादी केन्द्रीयता के आधार पर गठित नहीं हो पाया है। याद रखना होगा कि यह जनवादी केन्द्रीयता की नीति ही होती है कम्युनिस्ट पार्टी के संगठन की असली जान। जिस तरह इस जनवादी केन्द्रीयता को गठित करने का संघर्ष सही कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण का संघर्ष है, उसी तरह आंख की पुतली की तरह इसकी रक्षा करने का संघर्ष ही पार्टी को संशोधनवाद या संकीर्णतावाद से बचाने का संघर्ष है।

अब प्रश्न हो सकता है कि आखिर जनवादी केन्द्रीयता कहने से हम क्या समझते हैं?

जनवादी केन्द्रीयता को अगर हम एनाटॉमी (anatomy) के तरीके से काटें, तो हमें दो हिस्से मिलेंगे–इसके एक भाग में पायेंगे वैचारिक केन्द्रीयता (ideological centralism) एवं दूसरे भाग में संगठनात्मक केन्द्रीयता (organisational centralism)। पार्टी के अंदर

मार्क्सवाद–लेनिनवाद अर्थात द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर न सिर्फ आर्थिक व राजनैतिक विश्लेषण के क्षेत्र में, बल्कि जीवन के सभी पहलुओं को लेकर एक चिंतन प्रणाली, चिंतन की एकरूपता, दृष्टिकोण की एकता एवं एक ही उद्देश्यपूर्णता (one process of thinking, uniformity of thinking, oneness in approach and singleness of purpose) हासिल करने के संघर्ष के जरिये यह वैचारिक केन्द्रीयता हासिल होती है। इसे हासिल कर पाने पर ही समझा जायेगा कि पार्टी की अन्दरूनी जनतांत्रिक प्रक्रिया में सर्वहारा जनतंत्र की नीति काम कर रही है। याद रखना होगा कि मौजूदा वर्ग–विभाजित समाज में यह जनतंत्र संबंधी धारणा भी दो प्रकार की है–एक है, बुर्जुआ जनतंत्र की धारणा जो कि व्यक्तिगत मालिकाने, उत्पादन पर व्यक्तिगत अधिकार एवं बुर्जुआ जीवन प्रणाली अर्थात व्यक्तिवाद को प्रतिफलित करती है और दूसरी है, सर्वहारा जनतंत्र की धारणा जो कि सामूहिक मालिकाने, उत्पादन और वितरण पर सामूहिक अधिकार एवं सर्वहारा जीवन प्रणाली अर्थात सामूहिक जीवन प्रणाली को प्रतिफलित करती है। पार्टी के अंदर सर्वहारा जनतंत्र की नीति को कारगर रूप से लागू करने वाली इस वैचारिक केन्द्रीयता के आधार पर सांगठनिक केन्द्रीकरण हासिल होने से ही पार्टी में जनवादी केन्द्रीकरण का ढांचा गठित हो सकता है। इसलिए जनवादी केन्द्रीकरण पर बोलते हुए लेनिन ने कहा था कि सर्वहारा जनतंत्र (proletarian democracy) और केन्द्रीयता (centralism) के मिश्रण (fusion) के जरिये ही पार्टी के अंदर जनवादी केन्द्रीयता की नीति को कार्यरूप दिया जा सकता है।

यहां यह बात कभी भी भूलनी नहीं चाहिए कि पार्टी के अंदर सर्वहारा जनतंत्र को कार्यरूप देने के लिए जरूरी वास्तविक स्थिति तभी परिपक्व होती है, जब पार्टी के कार्यकर्ताओं की चेतना उस न्यूनतम उच्चतर स्तर पर पहुंच जाती है, जहां पहुंचने से सभी कार्यकर्ता (कम से कम अधिकांश कार्यकर्ता) अपने चिंतन को भाषाबद्ध रूप (articulate form) में व्यक्त कर सकते हैं। अर्थात वे वार्तालाप के द्वारा (in the form of dialogue) पार्टी के अन्दरूनी बहस–मुबाहसे और वैचारिक संघर्ष में सक्रिय रूप से भाग ले सकते हैं। वास्तविक क्षेत्र में संघर्षों के जरिये कार्यकर्ताओं द्वारा उन्नत सांस्कृतिक स्तर हासिल करना ही सैद्धांतिक चर्चा के लिए आवश्यक न्यूनतम योग्यता अर्जित कर पाने की पूर्वशर्त है। यह

संभव होने से ही विचार-विमर्श के क्षेत्र में नेताओं के साथ कार्यकर्ताओं का सैद्धांतिक संघर्ष सही मायने में द्वन्द्व-समन्वय का रूप ले सकता है। कार्यकर्ताओं की राजनैतिक चेतना और सांस्कृतिक स्तर कम से कम इस उच्च स्तर तक पहुंचे बगैर नेताओं और कार्यकर्ताओं के बीच होने वाले सैद्धांतिक विचार-विमर्श और तर्क-बहस असलियत में औपचारिक हो जाते हैं। अब आप सोचकर देखिये कि मैंने आपके सामने सर्वहारा जनतंत्र के जिस रूप की व्याख्या की, वह इन सब तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टियों में वास्तव में है या नहीं। हैरानी की बात यह है कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के पोलित ब्यूरो के सदस्य एवं पार्टी के चिंतक के रूप में परिचित नेता, नम्बूदिरीपाद ने जब कम्युनिस्ट पार्टी-संगठन की जान, इस जनवादी केन्द्रीयता के सिद्धांत की परिभाषा महज एक 'बहुमत-अल्पमत' के सिद्धांत के रूप में परिवर्तित कर दी, तो पार्टी के दूसरे नेताओं एवं कार्यकर्ताओं ने उस अजीब व्याख्या को निर्विरोध मान लिया।

जनवादी केन्द्रीयता की व्याख्या करते हुए नम्बूदिरीपाद ने कहा है कि चूंकि उनकी पार्टी बहुमत के निर्णय पर कार्य करती है एवं उसमें निम्नतर पार्टी संगठन (lower body) द्वारा उच्चतर पार्टी संगठन (higher body) के अनुगमन की नीति मानी जाती है। अतः उनकी पार्टी जनवादी केन्द्रीयता की नीति पर चल रही है और सिर्फ इसलिए ही वह एक सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी है।* नम्बूदिरीपाद ने 'बहुमत' के निर्णयानुसार काम करने को ही पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता की नीति का चालू होना तथा सामूहिक नेतृत्व का कायम होना समझ रखा है। इस तरह से इन लोगों ने सामूहिक नेतृत्व की धारणा को एक औसत औपचारिक जनतांत्रिक नेतृत्व (average formal democratic leadership) की धारणा में तब्दील कर डाला है। 'बहुमत के निर्णय को मानकर चलने' की यह नीति तो बुर्जुआ और पेटी बुर्जुआ पार्टियों में भी पायी जाती है। तब क्या इस बात से यह मानना पड़ेगा कि बुर्जुआ और पेटी बुर्जुआ पार्टियों में भी जनवादी केन्द्रीयता की नीति काम कर रही है एवं सामूहिक नेतृत्व लागू है? अगर मतैक्य (unanimity) नहीं हो सका, तो जरूरत के अनुसार

* नम्बूदिरीपाद ने कहा है: "The three fold submission-the individual to the organisation, the minority to the majority and the lower unit to the higher unit- such is the law of organisation...(New Age, Vol XI, No-5, May 1962)"

किसी कम्युनिस्ट पार्टी में भी 'बहुमत' के निर्णय के आधार पर काम करना पड़ता है एवं उस हालत में अल्पमत वालों को वह निर्णय मान कर ही चलना पड़ता है। लेकिन किसी पार्टी में सिर्फ इतना ही होने से यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें जनवादी केन्द्रीयता की नीति कायम हो गयी है। कोई भी मार्क्सवादी यह जानता है कि जनवादी केन्द्रीयता की नीति का सवाल सर्वहारा जनतंत्र और सामूहिक नेतृत्व की स्थापना के प्रश्न के साथ ओत-प्रोत रूप से जुड़ा हुआ है। इसलिए सिर्फ 'बहुमत' के निर्णय को मानकर चलने एवं उच्चतर पार्टी-संगठन के प्रति निम्नतर पार्टी-संगठन के अनुगत होने से ही पार्टी के अंदर जनवादी केन्द्रीयता की नीति लागू हो जाती हैं–ऐसी वाहियात बात थोड़ा-सा भी ज्ञान रहने से कोई मार्क्सवादी नहीं कर सकता।

कोई पार्टी सामूहिक नेतृत्व की सही धारणा से संचालित हो रही है या नहीं, इस बात पर विचार करने के लिए सबसे पहले यह देखना होगा कि इस सामूहिक नेतृत्व के गठन और विकास के लिए पार्टी के अंदर मार्क्सवाद के आधार पर सिर्फ राजनैतिक व आर्थिक क्षेत्रों में ही नहीं, बल्कि जीवन के सभी पहलुओं को लेकर एक चिंतन प्रणाली तथा चिंतन की एकरूपता गठित हुई है या नहीं। अर्थात वैचारिक केन्द्रीयता (ideological centralism) हासिल हुई है या नहीं और, यह देखना होगा कि पार्टी के अंदर दृष्टिकोण की एकता व एक ही उद्देश्य (oneness in approach and singleness of purpose) लाने का संघर्ष सही व सचेत ढंग से संचालित हो रहा है या नहीं।

दूसरी बात यह देखने की है कि अनुशासन व दृष्टिकोण की एकता (oneness in approach) लाने की दुहाई देते हुए क्या नेतागण कार्यकर्ताओं और समर्थकों में धार्मिक कट्टरता के ही अनुरूप एक प्रकार की पार्टी कट्टरता और अंधतापूर्ण अनुगमन की मनोवृत्ति पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं या पार्टी के कार्यकर्ताओं और समर्थकों में कट्टरता तथा तर्कहीन आचरण, तरह तरह के बुर्जुआ कुसंस्कार के प्रभाव, अंधता, हठ, उच्छृंखलता, 'हम बड़े हैं' की मनोभावना, झूठ बोलने की आदत इत्यादि को बढ़ावा देने की बात तो दूर, इन सबके विरुद्ध सभी पहलुओं से कठोर संघर्ष चलाते हुए पार्टी के कार्यकर्ताओं और समर्थकों में तर्क-संगत व्यवहार एवं दार्शनिक सहनशीलता (philosophical tolerence)

की मनोभावना पैदा करने के लिए निरंतर प्रयास करते जा रहे हैं। कारण यह है कि कम्युनिस्टों को हमेशा यह याद रखना चाहिए कि हर तरह की कट्टरता और अंधता फासीवाद की ही पूरक है एवं मार्क्सवाद-लेनिनवाद की बिलकुल विरोधी है।

इस प्रसंग में यह याद रखना जरूरी है कि दूसरे इंटरनेशनल एवं उसके अंतर्गत अधिकतर सोशल डेमोक्रेटिक पाटियां जब संशोधनवादी तथा उग्र राष्ट्रवादी (national chauvinist) हो गयी थीं, तब उनमें से ढीली-ढाली सोशल डेमोक्रेटिक पार्टियां फासीवाद को जन्म नहीं दे सकी थीं, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में फासीवाद का जन्म उन सब सोशल डेमोक्रेटिक पार्टियों से ही हुआ था, जिनमें पार्टी कट्टरता और अंधता जुझारू (militant) रूप ले चुकी थी। **इस युग में सोशल डेमोक्रेटिक पार्टियों का पूरी तरह पर्दाफाश (exposed) हो जाने तथा कम्युनिस्ट आंदोलन से सम्पूर्ण रूप से अलग हो जाने के बाद आज अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन के अंदर जो कम्युनिस्ट पार्टियां संशोधनवादी पार्टियों में तब्दील हो गयी हैं एवं विभिन्न मुल्कों में धीरे-धीरे राष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टियों का रूप लेती जा रही हैं (अर्थात नाम से कम्युनिस्ट पार्टी होते हुए भी असलियत में हर पहलू से सोशल डेमोक्रेटिक चरित्र अख्तियार कर चुकी हैं)–इन सब पार्टियों में अगर अंधता और कट्टरता के साथ जुझारू चरित्र (militant character) जुड़ जाता है, तो मार्क्सवाद का झंडा फहराते हुए ही इन सब पार्टियों के फासीवादी पार्टियों में तब्दील हो जाने का पूरा खतरा है, क्योंकि क्रांतिकारी सिद्धांत से प्रभावित संघर्ष का जुझारूपन और अंधता, कट्टरता और कठमुल्लापन से पैदा होने वाला जुझारूपन–ये दोनों एक चीज नहीं हैं, बल्कि दो गुणात्मक रूप से भिन्न चरित्र की हैं।**

सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी के संगठनात्मक ढांचे को अंतिम रूप देने के पहले पूरी की जाने वाली आवश्यक तीन पूर्व-शर्तें

इसके अलावा पार्टी के बारे में विचार करने के सिलसिले में एक और अत्यंत महत्वपूर्ण विषय पर ध्यान देना होगा। वह यह कि पार्टी किस तरह के संघर्ष के जरिये गठित हुई है एवं पार्टी के सांगठनिक

ढांचे को अंतिम रूप देने से पहले पार्टी के नेतृत्व ने मजदूर वर्ग की पार्टी के गठन संबंधी जरूरी प्राथमिक कार्यों को पूरा करने के लिए कठोर और कठिन संघर्ष चलाया है या नहीं।

1964 में जब सीपीआई से निकलकर कुछ नेताओं ने सीपीआई (एम) गठित की, तो कलकत्ता में हुई उनकी सातवीं कांग्रेस से पहले उनके कलकत्ता जिले के एक ग्रुप ने मुझसे भेंट की थी। मैंने उनसे कहा था कि एक नयी पार्टी बनाने से पहले आपको यह देख लेना चाहिए कि मुल्क में कोई सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी है या नहीं। अगर है तो उसी को मजबूत करना आपका काम होना चाहिए और अगर आपके विचार से ऐसी पार्टी मुल्क में नहीं है, तो पार्टी संविधान बनाकर उसके अनुसार पार्टी को अंतिम संगठनात्मक रूप देने से पहले सही मार्क्सवादी पद्धति से पार्टी-गठन के प्राथमिक कार्य आपको पूरे कर लेने होंगे। ऐसा किये बगैर जिस पार्टी से आप निकल आये हैं, चिंतन-प्रक्रिया में उसी की परम्परा को आप नये शब्दजाल की आड़ में ढोते रहेंगे। अब सवाल है कि कम्युनिस्ट पार्टी गठित करने के ये प्राथमिक कार्य आखिर क्या-क्या हैं?

प्रथमतः, जो लोग पार्टी-गठन करने के लिए कदम बढ़ायेंगे, उन्हें आपस में चिंतन जगत के सभी क्षेत्रों, यहां तक कि व्यक्तिगत जीवन के सभी पहलुओं को लेकर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर एक समाजवादी आंदोलन (socialist movement) पैदा करके वैचारिक केन्द्रीयता (ideological centralism) की बुनियाद कायम करनी होगी।

द्वितीयतः, यह याद रखना होगा कि सामूहिक नेतृत्व की वास्तविक एवं ठोस (concrete) धारणा विकसित करने का संघर्ष एक मायने में पार्टी-गठन का प्राथमिक संघर्ष है। इसलिए चिंतन जगत के सभी क्षेत्रों को लेकर वैचारिक केन्द्रीकरण अर्थात एक ही चिंतन प्रणाली, चिंतन की एकरूपता, दृष्टिकोण की अभिन्नता और उद्देश्य की एकलता (one process of thinking, uniformity of thinking, oneness in approach and singleness of purpose) विकसित कर पाये बगैर, पार्टी के अंदर सामूहिक नेतृत्व की यह ठोस और वास्तविक धारणा भी पैदा कर पाना संभव नहीं है और जब तक पार्टी गठन के लिए आगे बढ़े तमाम नेताओं और कार्यकर्ताओं में सामूहिक नेतृत्व की यह व्यक्तिकृत ठोस

धारणा जन्म नहीं ले लेती है, तब तक यह समझना होगा कि पार्टी को परिपूर्ण संगठनात्मक रूप देने का समय नहीं आया है। क्योंकि ऐसी हालत में पार्टी को पूर्ण संगठनात्मक रूप देने की कोशिश करने से वह पार्टी जनतांत्रिक तरीके से केन्द्रित पार्टी (democratically centralised) पार्टी होने की बजाय यांत्रिक ढंग से केन्द्रित (mechanically certralised) पार्टी में तब्दील हो जाती है और सामूहिक नेतृत्व गठित करने की बजाय औपचारिक (formal) तथा ब्यूरोक्रेटिक नेतृत्व को जन्म दे डालती है।

तृतीयत:, यह कि पार्टी के अन्दरूनी क्षेत्र में नेताओं और कार्यकर्ताओं के अथक संघर्ष के जरिये, जो पार्टी गठन के लिए आगे आये हैं, पेशेवर क्रांतिकारियों (professional revolutionaries) का एक दस्ता पैदा करना होगा। 'पेशेवर क्रांतिकारी' कहने से मार्क्सवाद की परिभाषा में पैसे के बदले पूरा समय देने वाला कार्यकर्ता (whole time worker) नहीं समझा जाता है। इस विषय में भी आप लोगों की स्पष्ट समझदारी रहनी चाहिए। पेशेवर क्रांतिकारी मजदूर वर्ग के लड़ाकू सचेत हिस्से के वे लोग होते हैं, जो सिर्फ राजनैतिक व आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि जीवन के सभी पहलुओं को लेकर एक समाजवादी आंदोलन गठित करते हुए उसके माध्यम से मार्क्सवाद-लेनिनवाद अर्थात मजदूर वर्ग का क्रांतिकारी दृष्टिकोण जीवन में इस प्रकार अपना सके हों, जिससे कि व्यक्तिगत जीवन की नाना प्रकार की सुविधा-असुविधाओं से ऊपर उठकर वे बिना शक-शुबहा के बेहिचक तथा आनंद के साथ क्रांतिकारी जीवन के संघर्ष की जटिल प्रक्रियाओं में हर समय अपने को संलग्न रख सके हों और सभी विषयों में, यहां तक कि व्यक्तिगत मामलों में भी, क्रांति के लिए पार्टी के सामने आनंद के साथ तथा बिना दुविधा के अपने को समर्पित कर सके हों। अगर इन पेशेवर क्रांतिकारियों से ही पार्टी के नेता और नेतृत्वकारी कार्यकर्ता बने हों, तभी वह पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी की योग्यता हासिल कर सकती है।

मूलत: इन तीनों प्राथमिक शर्तों के पूरा होने के बाद ही सम्मेलन के माध्यम से किसी कम्युनिस्ट पार्टी के संविधान पर आधारित संगठनात्मक ढांचे का निर्माण किया जा सकता है। बगैर इन्हें पूरा किये मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी के पूरे संगठनात्मक ढांचे को अंतिम रूप कतई नहीं दिया जाना चाहिए। इसलिए सीपीआई (एम) के गठन से पहले मुझसे मिलने

आये नेताओं से मैंने कहा था कि इन तीनों प्राथमिक कार्यों को कर सकने के बाद ही आप लोग, जो सीपीआई से निकलकर नयी पार्टी बनाना चाह रहे हैं, सीपीआई की गैर-मजदूर वर्गीय चिंतन-प्रणाली और चिंतनधारा, जो चेतन व अचेतन रूप में आपकी चिंतन प्रक्रिया में अभी भी कार्य करती आ रही है, उससे संबंध तोड़ सकेंगे और तभी आप मजदूर वर्ग के सही दृष्टिकोण को अपनाते हुए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर मजदूर वर्ग की एक सही क्रांतिकारी पार्टी गठित करने में सक्षम होंगे। मजदूर वर्ग की पार्टी गठित करने के लिए जरूरी इन प्राथमिक संघर्षों से बचकर मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांतों को ऊपरी तौर पर मोटे रूप में अपनाकर मात्र उसी के आधार पर अगर चंद लोग या राजनैतिक गुट जल्दबाजी में कोई पार्टी बना भी लेते हैं, तो वह अधिक से अधिक रोजमर्रा की राजनैतिक तथा आर्थिक लड़ाइयां चलाने का एक प्लेटफार्म (मंच) बन सकता है—मजदूर वर्ग के जटिल क्रांतिकारी आंदोलनों के संचालन के लिए जरूरी शिक्षा से लैस मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी वह कतई नहीं बन सकती। कम्युनिस्ट पार्टी को गठित करते समय प्रारंभ में ही इसके नेताओं ने इन प्राथमिक कार्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक कठोर एवं कष्टसाध्य संघर्ष नहीं चलाया था। फिर एक बार उस संघर्ष को किये बिना ही पार्टी कांग्रेस बुलाने का साफ अर्थ यह होगा कि पुनः काफी संख्या में कम्युनिस्ट मनोभाव वाले व्यक्तियों और राजनैतिक ग्रुपों द्वारा मोटे तौर पर राजनैतिक कार्यक्रम के आधार पर सम्मिलित संघर्ष का एक मंच (प्लेटफार्म) बनाया जायेगा। बस, यही आप कर पायेंगे एवं आप कुछ-कुछ क्रांतिकारी नारों की आड़ में डांगे की संशोधनवादी पार्टी के ही अनुरूप एक और पेटी बुर्जुआ पार्टी को जन्म दे डालेंगे। इससे सही क्रांतिकारी पार्टी नहीं बन सकेगी।

सीपीआई (एम) एक सही कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में विकसित होने में विफल क्यों?

फिर भी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं ने पार्टी गठन के इस प्राथमिक, कष्टसाध्य और कठोर संघर्ष से, केवल जिसके द्वारा ही सीपीआई की संशोधनवादी चिंतन प्रणाली की परंपरा से संबंध-विच्छेद करना संभव था, बचकर खूब धूमधाम से कलकत्ता में अपना सातवां महासम्मेलन (कांग्रेस) किया एवं सीपीआई की शिक्षा से प्रशिक्षित तथा

उसी परम्परा को लेकर चलने वाले पुराने नेताओं और ग्रुपों को मिलाकर उसी पुरानी परम्परा और चिंतन-पद्धति का अनुसरण करते हुए सिर्फ कुछ शब्दों के हेर-फेर और चतुराई से कौशलगत थोड़ा-बहुत बनावटी तफर्का पैदा कर उसे ही नये क्रांतिकारी सिद्धांत की संज्ञा देकर एक नयी पार्टी का गठन कर लिया। मैंने उसी दिन कहा था कि यह पार्टी फिर टूटकर रहेगी। देखिए, तीन वर्ष गुजरते-गुजरते उससे नक्सलपंथी नेता और कार्यकर्ता बाहर निकल आये और उसे नव-संशोधनवादी कहने लगे तथा एक और पार्टी बनाने की कोशिश में लगे हैं। इस सभा में मैं फिर एक बार कह रहा हूं कि सीपीआई (एम) से नक्सलपंथी कहलाने वाले जो लोग निकल आये हैं, इनका भी नतीजा आखिरकार वैसा ही होगा और संभवत: एक-दो साल के अंदर ही मेरी इस बात की सत्यता साबित हो जायेगी। मैं यह किस आधार पर कह रहा हूं? क्या ज्योतिष विद्या के बल पर? नहीं। तीन चीजों की व्याख्या के आधार पर मैं यह बात कह पा रहा हूं।

पहली यह कि इस पार्टी का वर्ग चरित्र (class character) और चिंतन प्रक्रिया व कार्यपद्धति (process of thinking and methodological approach) उसी पुरानी पार्टी की परम्परा की लीक पर चल रही है।

दूसरी यह कि इस पार्टी का सिद्धांत गलत है। हमारे मुल्क में क्रांति की जो वास्तविक जटिल प्रक्रिया सही मायने में चल रही है, उसे वैज्ञानिक तरीके से समझने की कोशिश न करके वास्तविकता से परे मनोगत ढंग (subjective way) से अर्थात विदेशी पार्टी और विदेशी नेताओं का अंधानुकरण करके क्रांतिकारी सिद्धांत के नाम पर कुछ मनगढ़ंत बातों को वास्तविक परिस्थिति पर ऊपर से लाद देने से एवं जनसाधारण की रोजमर्रा की समस्याओं को लेकर समय-समय पर कुछ गरमागरम लड़ाई चलाने से ही मजदूर वर्ग की सही क्रांतिकारी पार्टी गठित नहीं हो जाती। इन्होंने जिस 'जनता की जनवादी क्रांति' के सिद्धांत की रचना की, वह भारत में चल रही क्रांति की जटिल प्रक्रिया का वास्तव में सही प्रतिबिम्ब तो है ही नहीं, बल्कि भारतीय क्रांति की वास्तविक परिस्थिति के ऊपर लादा हुआ एक मनगढ़ंत सिद्धांत है। इसलिए वह सिद्धांत अनिवार्य रूप से उक्त पार्टी के अंदर दो परस्पर विरोधी मानसिकताओं को जन्म दे रहा है—पार्लियामेन्टरी राजनीति के

रास्ते पर चलते हुए जब कभी पार्टी में कुछ स्थिरता पैदा होती है, कुछ नेता जनता की जनवादी क्रांति का मंत्र जपते हुए तरह-तरह की क्रांतिकारी बोलियों की आड़ में पार्टी को पार्लियामेन्टरी राजनीति के जाल में फंसाना चाहते हैं। दूसरी ओर पार्लियामेन्टरी राजनीति की मौकापरस्ती से ऊबे हुए लोगों का एक गुट है, जिनके मन में क्रांति के लिए आतुरता है, मगर चूंकि पार्टी की चिंतन प्रक्रिया सही नहीं है एवं जनता की जनवादी क्रांति का सिद्धांत क्रांति की वास्तविक स्थिति का सही प्रतिफलन नहीं है अर्थात गलत है और इसके फलस्वरूप उनमें अति क्रांतिकारी भटकाव पैदा हो रहा है और वे बेवक्त क्रांतिकारी ताकत को राजसत्ता के हमले के सामने धकेल कर क्रांति को ही नुकसान पहुंचा रहे हैं तथा राजसत्ता की दमनात्मक ताकत को मजबूत करने में मददगार बन रहे हैं।

तीसरी बात यह है कि इस पार्टी के अंदर भी उसी पुराने व्यक्तिवाद का प्रभाव तथा गुटबाजी की मानसिकता मौजूद है, जो खासकर पेटी-बुर्जुआ वर्ग की विशेषता होती है एवं जिसके चलते सीपीआई टूटी। यह पार्टी भी उसी पुरानी गुटबाजी की विशेषता को साथ लिये हुए ही पैदा हुई है। इसलिए जब तक ये सारे ग्रुप आपस में एक-दूसरे को बर्दाश्त करते हुए चल पायेंगे, तब तक पार्टी की पैबंद लगी एकता भी किसी तरह बनी रहेगी। लेकिन इनका आपसी तालमेल जैसे ही टूटा कि पार्टी फिर से टूट जायेगी। इसी तरह पुरानी गैर-मजदूर वर्गीय चिंतन पद्धति, व्यक्तिवाद व गुटबाजी की मानसिकता का रुझान और जनता की जनवादी क्रांति का सिद्धांत, जो क्रांति की वास्तविक स्थिति पर लादा हुआ एक मनगढ़ंत सिद्धांत मात्र है—ये तीन कारण मौजूद रहने पर पार्टी जितने भी भागों में क्यों न बंटे, उसका प्रत्येक भाग आखिर तक फिर से दो भागों में विभक्त हो जायेगा। एक ओर, कुछ लोग नाना तरह के तर्क देकर धीरे-धीरे संसदवाद की ओर जाना चाहेंगे और अंततः पार्टी को संसदीय राजनीति की संकीर्ण दायरेबंदी में फंसा देंगे और दूसरी ओर कुछ लोग उग्रवाद और दुःसाहसवादी हठ (adventurism) की ओर कदम बढ़ायेंगे।

सीपीआई (एम) गठित होने के साथ ही साथ इसी नियम से विभक्त हो गयी है। नक्सलपंथी पार्टी गठित होने के बाद इसका भी भविष्य यही होगा, क्योंकि यह भी ग्रुपों को लेकर ही गठित हो रही है

एवं उसका सिद्धांत भी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के समान ही जनता की जनवादी क्रांति का ही सिद्धांत है। इनकी नयी पार्टी गठित करने का अर्थ है एक या कई खास गुटों के विरुद्ध दूसरे कई गुटों का समन्वय हो जाना। नये सिरे से सच्ची कम्युनिस्ट क्रांतिकारी पार्टी के गठन के साथ इसका क्या संबंध है? यह तो उसी तरह की राजनैतिक लाइन, वैसी ही चिंतन प्रणाली, वैसा ही सांस्कृतिक स्तर लेकर एक नयी पार्टी है–अंतर है सिर्फ कुछ राजनैतिक शब्दावली एवं व्यवहार का अर्थात रणकौशल का।

कम्युनिस्ट पार्टी में नहीं हो सकता गुटों का अस्तित्व

मार्क्सवाद को आदर्श के रूप में मानने के बावजूद पार्टी के निर्माण में लगे इन लोगों ने अपने अंदर एक चिंतन प्रणाली, चिंतन की एकरूपता, दृष्टिकोण की अभिन्नता एवं एक ही उद्देश्य तथा सामूहिक नेतृत्व की एक ठोस धारणा विकसित करने के लिए जरूरी लम्बे एवं जटिल संघर्ष को नजरअंदाज करने के फलस्वरूप, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, इस पार्टी को कुछ पेटी-बुर्जुआ राजनैतिक ग्रुपों और व्यक्तियों द्वारा मोटे तौर पर लिये गये राजनैतिक कार्यक्रम के आधार पर सिर्फ 'राजनैतिक संघर्ष के एक सम्मिलित मंच' (प्लेटफार्म) में तब्दील कर डाला है। अपने को कम्युनिस्ट कहते हुए भी इस पार्टी के नेता और ज्यादातर कार्यकर्ता अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने-अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से परिचालित होते हैं और ज्यादातर नेतागण व्यक्तिगत अहं एवं बुर्जुआ राजनीतिज्ञों की तरह व्यक्तिगत राजनैतिक महत्वाकांक्षा (political careerism) की ही एक-एक प्रतिमूर्ति हैं। थोड़ी खोज-खबर लेंगे तो पता लग जायेगा कि इस पार्टी में हरेक नेता का अपना-अपना गुट है। जब तक ये सब गुट आपस में समझौता करके मिलजुल (adjust) कर चल पाते हैं, तब तक पार्टी भी एकताबद्ध (united) रहती है। परंतु जब यह संभव नहीं हो पाता, तभी पार्टी विभक्त होकर फिर अलग-अलग पार्टियों में तब्दील हो जाती है। ग्रुपों के इस झगड़े के चलते जब पार्टी विभक्त हो जाती है, तब इसे कार्यकर्ताओं तथा आम जनसाधारण से छिपाए रखने के लिए नेता लोग हमेशा राजनैतिक मतभेद का झूठा बहाना बनाते हैं। नेता लोग यह सब जानबूझकर करते हैं या नहीं–यह बड़ी बात नहीं है। मुख्य बात यह है कि पार्टी में व्यक्तिवाद का प्रभाव प्रबल होने से ही गुटबाजी की

मानसिकता तथा उपदलीय षड्यंत्र, नेतृत्व हथियाने के लिए झगड़े आदि बुर्जुआ विचारधारा की ये सब जहरीली प्रतिक्रियाएं भी पार्टी के अंदर प्रभावी रूप से काम करेंगी ही।

इस प्रसंग में एक और महत्वपूर्ण बात आपको बतला देना मैं जरूरी समझता हूं–भारत जैसे बहु–उपराष्ट्रीयताओं वाले मुल्क में, जहां जनसाधारण के बीच उपराष्ट्रीयता की मानसिकता काफी मात्रा में मौजूद है एवं मेरे ख्याल से जनवादी मांगों के आधार पर होने वाली सभी प्रकार की लड़ाइयों के बावजूद यह मानसिकता यहां और भी कुछ दिनों तक बनी रहेगी–यहां सिर्फ व्यक्तिवाद ही नहीं, बल्कि सभी अखिल भारतीय पार्टियों में व्यक्तिवाद के अलावा नेताओं और कार्यकर्ताओं में मौजूद उपराष्ट्रीय मानसिक जटिलता भी पार्टी के अंदर ग्रुप मनोवृत्ति को पैदा करने में मदद करती रहती है। इसलिए वैचारिक केन्द्रीयता हासिल करने का सवाल पार्टी के अंदर एकबद्धता पैदा करने तथा उसे बनाये रखने और व्यक्तिवादी झुकाव एवं गुटबाजी को परास्त कर सकने के लिए बहुत ही जरूरी शर्त है।

एक सही कम्युनिस्ट पार्टी में ग्रुप या उपदलीय मनोभाव को बढ़ावा नहीं दिया जा सकता, क्योंकि ग्रुप का अर्थ ही है समानान्तर तत्वों (parallels) का होना और समानान्तर का मतलब है पार्टी के अंदर समानान्तर चिंतन धाराएं, जो सिर्फ एक बुर्जुआ या पेटी–बुर्जुआ पार्टी में ही संभव हो सकती हैं। एक सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी में यह चीज चल नहीं सकती। बल्कि एक सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी में इस तरह के ग्रुप मनोभाव को जन्म देने वाले कारणों को खत्म (eliminate) करने के सिलसिले में प्रत्येक कार्यकर्ता और नेता को व्यक्तिवाद के प्रभाव से मुक्त करने के लिए सामूहिक तथा सचेत संघर्ष चलाना पड़ता है तथा उस संघर्ष को हर वक्त जीवंत बनाये रखना पड़ता है।

उनकी पार्टी के अंदर विभिन्न ग्रुप हैं, इससे नम्बूदिरीपाद भी इनकार नहीं कर सके। लेकिन कांग्रेस के अंदर जिस तरह के ग्रुपों की टक्कर है, उसके साथ अपनी पार्टी के अंदर के ग्रुपों के स्वरूप का अंतर समझाते हुए नम्बूदिरीपाद ने कहा कि कांग्रेस के अंदर विभिन्न ग्रुपों का द्वन्द्व सत्ता का झगड़ा है और सीपीआई (एम) के अंदर जो ग्रुप हैं, वे सत्ता की लड़ाई के आधार पर नहीं, बल्कि पार्टी के अंदर विभिन्न चिंतनधाराओं (different trends of thinking) के आधार पर

बने हुए हैं। बहुत खूब! अपनी सफाई देते समय उन्होंने अनजाने में ही एक कटु सत्य को स्वीकार कर लिया है। हालांकि मैं जानता हूं कि इस बात को वे मानना नहीं चाहेंगे, लेकिन अगर वे एक सही मार्क्सवादी-लेनिनवादी हैं, तो उनके लिए यह अनजानी बात नहीं होनी चाहिए कि वर्ग-विभाजित समाज में विभिन्न चिंतनधाराओं का मतलब ही है विभिन्न वर्गों की चिंतनधाराएं। यह सही है कि किसी खास सवाल पर मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी के अंदर भी मतभेद (difference) हो सकता है। लेकिन वह मतभेद एक ही कार्यप्रणाली (methodological approach) या चिंतनधारा (trend of thinking) अर्थात एक चिंतन प्रक्रिया (process of thinking) के दायरे में रहते हुए आपस के मतभेद और द्वन्द्व के अस्तित्व को किसी भी हालत में चिंतन पद्धति की विभिन्न धाराओं का अस्तित्व नहीं समझा जाता है। फिर भी नम्बूदिरीपाद कहते हैं कि उनकी पार्टी में जो मतभेद हैं वे चिंतन प्रक्रिया की विभिन्न धाराओं को प्रतिबिंबित करते हैं। चिंतन की विभिन्न धाराओं का सवाल तो पूरी तरह से वर्ग चिंतन पद्धति (class methodological approach) के साथ सीधा जुड़ा हुआ है–हो सकता है यह बात वे नहीं जानते हों या अपनी सफाई (defence) देने के झुकाव वश उन्हें इसका ख्याल ही नहीं रहा हो।

याद रखना होगा कि कम्युनिस्ट पार्टी एक बुर्जुआ या पेटी-बुर्जुआ पार्टी की तरह कुछ व्यक्तियों एवं ग्रुपों का जमावड़ा मात्र नहीं होती है। लेनिन ने कम्युनिस्ट पार्टी की जीव-देह (living organism) के साथ तुलना की अर्थात कम्युनिस्ट पार्टी कोई यांत्रिक ढांचा-सा (mechanical whole) नहीं, बल्कि जैविक ढांचा-सा (organic whole) है, जैसा कि एक मानव-देह है, सभी अंग-प्रत्यंगों के अविच्छिन्न सन्निवेश से बना सम्पूर्ण एक शरीर है। यह एक अखण्ड जीव-देह (monolithic organism) है, इसका एक स्नायु केन्द्र (centre of nerves) अर्थात मस्तिष्क (brain) है। किसी जीव-देह का यह मस्तिष्क ही केन्द्र बिंदु या संचालिका शक्ति होती है। यह मस्तिष्क ही सभी अंग-प्रत्यंगों का संचालन करता है। फिर अंग-प्रत्यंग और ज्ञानेन्द्रियां (sense organs) भी अपने क्रियाकलाप द्वारा विभिन्न प्रक्रियाओं से मस्तिष्क के कार्यों (functions) को प्रभावित करती हैं। मस्तिष्क के साथ ज्ञानेन्द्रियों (sense organs) व अंग-प्रत्यंगों का यह संबंध द्वन्द्वात्मक संबंध के नियमों से

संचालित होता है। एक सही कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन भी इसी तरह का होता है। एक सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी में नेता के साथ पार्टी-पांतों के आम सदस्यों (rank and file) का संबंध, केन्द्रीय कमेटी के साथ निम्नतम स्तर के सेल से लेकर पार्टी की दूसरी बॉडियों का संबंध, मस्तिष्क के साथ विभिन्न अंग-प्रत्यंगों और ज्ञानेन्द्रियों के संबंध के अनुरूप होता है। फिर नीचे से लेकर सर्वोच्च स्तर तक ये सभी पार्टी बॉडियां भी अलग-अलग तरह से कई कार्यकर्ताओं और नेताओं की जमात मात्र नहीं होती हैं, बल्कि प्रत्येक का ही अपने-अपने दायरे में आकर्षण का केन्द्र (centre of attraction) या नेता होता है।

इन सभी पार्टी बॉडियों तथा सभी कार्यकर्ता-नेताओं के सम्मिलित संघर्ष के माध्यम से जो सामूहिक ज्ञान निर्मित होता है, जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, चूंकि उस सामूहिक ज्ञान की धारणा अमूर्त (abstract) नहीं हो सकती, इसलिए पार्टी के सर्वोच्च नेतृत्व अर्थात केन्द्रीय कमेटी के जिस नेता के माध्यम से उस सामूहिक ज्ञान की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति होती है, वे ही पार्टी के चिंतक, नेता, शिक्षक तथा पथप्रदर्शक होते हैं। ऐसा नेता विभिन्न नेताओं के बीच संधि या समझौते द्वारा या जोड़-तोड़ के जरिये नहीं बनाया जाता। यह तो पार्टी के अन्दरूनी सामूहिक तथा सचेत संघर्ष अर्थात सामूहिक नेतृत्व की वास्तविक और ठोस धारणा (concrete conception of collective leadership) का विकास कराने के संघर्ष के जरिये जन्म लेता है। याद रखना होगा कि एक कम्युनिस्ट पार्टी के अंदर नेतृत्व की यह परिघटना (phenomenon) समानान्तर नेताओं की नहीं, बल्कि नेताओं के नेता संबंधी परिघटना है। अपने जीवन काल में लेनिन सीपीएसयू में सभी नेताओं के नेता, पार्टी के चिंतक, नेता, शिक्षक तथा पथप्रदर्शक थे। जब लेनिन बीमार होकर बिस्तर पर थे और स्तालिन पार्टी के महासचिव थे, उस समय भी लेनिन ही थे पार्टी के नेता और शिक्षक। स्तालिन भी हृदय से यह मानते थे। चीन की पार्टी में भी माओ त्से-तुंग ही पार्टी के चिंतक एवं नेता हैं। इसे ही सामूहिक नेतृत्व की ठोस एवं वास्तविक अभिव्यक्ति कहा जाता है। सामूहिक नेतृत्व का सही रूप यही है।

लेकिन हमारे देश में कम्युनिस्ट नामधारी इन सब पार्टियों में किस पार्टी में और कौन-वह नेताओं के नेता (leader of all leaders) हैं, जिन्हें उस पार्टी में केन्द्रीय कमेटी के सदस्य तथा पार्टी के दूसरे तमाम

नेता भी सही मायने में पार्टी के चिंतक, नेता तथा पथप्रदर्शक मानते हैं? असलियत में उनमें कोई भी किसी का नेता नहीं है। वे सभी नेता हैं। एक ही पार्टी में होते हुए उनके प्रत्येक नेता का एक-दूसरे के साथ व्यक्तिगत तथा सैद्धांतिक विरोध है। ऐसी स्थिति में पार्टी में निम्नतम पार्टी संगठन अर्थात सेल से लेकर उच्चतम पार्टी संगठन अर्थात केन्द्रीय कमेटी तक कोई भी पार्टी संगठन (party body) सही अर्थ में एक जीव-देह (organism) के अनुरूप नहीं हो सकता। फलतः ऐसी हालत में सिर्फ फौरी जरूरत (exigency) के मुताबिक वे पार्टी के अंदर बहुमत के फैसले को मानकर किसी तरह काम चलाया करते हैं और इसे ही वे सामूहिक नेतृत्व की संज्ञा देते हैं।

सुधार-संशोधनों के जरिये बुर्जुआ या पेटी बुर्जुआ वर्ग की पार्टी को मजदूर वर्ग की पार्टी में रूपान्तरित नहीं किया जा सकता

अब मैं इन तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टियों के असली वर्ग चरित्र को दिखाने के लिए सीपीआई के एक नेता के कथन को पेश करता हूं। जोशी एवं रणदिवे के बाद जब अजय घोष पार्टी के महासचिव बने, तो उन्होंने कहा कि उनकी पार्टी ने अपनी शुरुआत से लेकर उनके नेतृत्व के कायम होने तक की पूरी अवधि में मजदूर वर्ग के चिंतन को प्रतिबिंबित नहीं किया। अर्थात उनके कहने के अनुसार पार्टी की चिंतनधारा में मजदूर वर्ग का दृष्टिकोण मौजूद नहीं था। सत्यवादिता का यह निःसंदेह एक सराहनीय नमूना है। लेकिन यह तो उनके वक्तव्य का सिर्फ नकारात्मक (negative) पहलू ही है। उसका सकारात्मक (positive) पहलू क्या है? कोई भी कम्युनिस्ट यह जानता है कि वर्ग विभाजित समाज में सभी चिंतन किसी न किसी वर्ग स्वार्थ पर आधारित वर्ग चिंतन होते हैं। अजय घोष के कथनानुसार उनकी पार्टी में उसकी शुरुआत से लेकर उनके नेतृत्व कायम होने तक 24-25 वर्षों के दौरान पार्टी की चिंतनधारा में मजदूर वर्ग का दृष्टिकोण प्रकट नहीं हुआ। अर्थात पार्टी का चिंतन या विचार मजदूर वर्ग का चिंतन या विचार नहीं था। सोचने की बात यह है कि अगर 24-25 वर्षों के लम्बे अर्से में पार्टी अपनी चिंतन पद्धति एवं विचार पद्धति के क्षेत्र में मजदूर वर्ग के चिंतन तथा मजदूर वर्ग के दृष्टिकोण से संचालित नहीं हुई हो, तो वर्तमान वर्ग विभाजित समाज में वह पेटी-बुर्जुआ वर्ग के चिंतन या

बुर्जुआ वर्ग के चिंतन से ही संचालित हुई होगी। लेकिन यह बात स्वीकार करने की हिम्मत उनमें नहीं थी।

तो, जो पार्टी अपनी शुरुआत के बाद से 24-25 सालों तक चिंतन एवं विचार पद्धति में पेटी-बुर्जुआ या बुर्जुआ वर्ग के चिंतन को प्रतिबिंबित करती आयी एवं बुर्जुआ या पेटी-बुर्जुआ चिंतन पद्धति तथा दृष्टिकोण के आधार पर बने राजनैतिक कार्यक्रम को लेकर संघर्ष करती आयी हो, इन संघर्षों में चाहे उसके अंदर कितनी ही निष्ठा और आत्म त्याग क्यों न रहा हो, बुर्जुआ चिंतन पद्धति से बने राजनैतिक कार्यक्रम के आधार पर संचालित संघर्ष के जरिये किस तरह वह एक कम्युनिस्ट पार्टी हो सकती है? अगर सिर्फ कई लड़ाइयों एवं कुर्बानियों के नमूने दिखलाकर तथा पार्टी के नाम के ही बल पर कोई पार्टी अपने को कम्युनिस्ट पार्टी होने का जोरदार दावा करे तब क्या यही समझना होगा कि बुर्जुआ या पेटी-बुर्जुआ पद्धति से संचालित होकर भी कोई पार्टी सिर्फ कम्युनिस्ट पार्टी का नाम लेकर चलने और अनेक संघर्ष करने से ही कम्युनिस्ट पार्टी बन जाती है? खास-खास परिस्थिति में पेटी बुर्जुआ, सोशल डेमोक्रेटिक तथा बुर्जुआ पार्टियां भी तो जनसाधारण की समस्याओं को लेकर लड़ाइयों का संचालन करती हैं और जरूरत पड़ने पर वे बहुत जुझारू किस्म की लड़ाइयां भी संगठित करती हैं। यह समझने के लिए तो मार्क्सवाद-लेनिनवाद की कोई खास जानकारी या अनुभव की जरूरत नहीं होती है। तो फिर उसी पहलू को प्रमुख विचारणीय विषय बनाकर संघर्ष की कामयाबी-नाकामयाबी या गलती-खामियों पर चर्चा करना तथा ऐसी एक पार्टी द्वारा अपनी गलती मान लेने का मतलब एक बुर्जुआ या पेटी-बुर्जुआ पार्टी को मजबूत करने की कोशिश के सिवा और क्या समझा जायेगा? ऐसी एक पार्टी को मात्र सुधार के द्वारा मजदूर वर्ग की सही क्रांतिकारी पार्टी में तब्दील कर लेने का सवाल ही कैसे उठ सकता है? फिर भी उन दिनों उस पार्टी के किसी नेता या कार्यकर्ता ने साहस के साथ आगे बढ़कर इस सवाल को रखने की जरूरत महसूस नहीं की थी। ऐसी बात नहीं है कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के ये सब नेता एवं नक्सलपंथी नाम से परिचित लोग उस वक्त पार्टी में थे नहीं। वे सभी उन दिनों उस पार्टी के अंदर मौजूद थे। लेकिन उन दिनों उनमें से किसी ने यह सवाल नहीं पूछा। इनका रवैया बहुत हद तक इस किस्म का था कि मानो गलती

मान लेने से ही सब कुछ ठीक हो जाता है; गलती किस तरह की है—वह बुनियादी चरित्र की है या किसी और तरह की—यह सब जानने की जरूरत नहीं है। उस गलती को स्वीकारने पर पार्टी का क्रांतिकारी चरित्र उजागर हुआ था या पेटी-बुर्जुआ चरित्र ही ज्यादा प्रकट हुआ, इन बातों को भी समझने की उन्होंने जरूरत नहीं समझी। सिर्फ गलती स्वीकार कर और सुधार की बातें कहकर ही उन्होंने अपनी जिम्मेदारी खत्म कर दी।

ये लोग मार्क्सवाद के वर्ग सिद्धांत की इस प्राथमिक बात को ही नहीं जानते हैं कि जिस तरह सुधार के द्वारा बुर्जुआ वर्ग की राजसत्ता को मजदूर वर्ग की राजसत्ता में तब्दील नहीं किया जा सकता, ठीक उसी तरह सुधार के जरिये बुर्जुआ या पेटी बुर्जुआ वर्ग की पार्टी को भी मजदूर वर्ग की पार्टी में रूपान्तरित नहीं किया जा सकता। हालांकि मजदूर वर्ग की राजसत्ता संशोधनवाद पर अमल करते-करते प्रतिक्रांति के जरिये बुर्जुआ वर्ग की राजसत्ता में तब्दील हो सकती है। उसी तरह मजदूर वर्ग की एक सही पार्टी भी मार्क्सवाद-लेनिनवाद से भटक कर बुर्जुआ या पेटी बुर्जुआ वर्ग की पार्टी में तब्दील हो सकती है। कार्ल मार्क्स जैसे महान चिंतक ने भी स्वयं जिस प्रथम इंटरनेशनल का गठन किया था, वह जब एक पेटी-बुर्जुआ संगठन में तब्दील हो गया, तो उन्होंने उसका सुधार करके मजदूर वर्ग की सही पार्टी में तब्दील करने का अवैज्ञानिक रास्ता नहीं अपनाया था, बल्कि अपने हाथों से ही उन्होंने उसे भंग कर दिया था। दूसरे इंटरनेशनल का भी यही इतिहास है। जिस दूसरे इंटरनेशनल को लेनिन ने अपने खून की एक-एक बूंद देकर मजबूत बनाने में मदद की थी, वही इंटरनेशनल जब बाद में अंधराष्ट्रवादियों के संगठन में तब्दील हो गया, तो उसे भंग कर देने के लिए खुद लेनिन ने ही जिमरवाल्ड कांफ्रेंस में प्रस्ताव पेश किया था, ''दूसरा इंटरनेशनल अंधराष्ट्रवादियों के संगठन में तब्दील हो गया है।'' लेनिन के इस विश्लेषण के साथ सहमत होते हुए भी जर्मनी की रोजा लुक्जमबर्ग और कार्ल लिबनेख्ट पहले तो लेनिन के दूसरे इंटरनेशनल को भंग कर देने संबंधी विचार के साथ एकमत नहीं हो सके थे, बल्कि उन्होंने लम्बे अर्से की मेहनत से बनाये गये द्वितीय इंटरनेशनल को सुधार के जरिये फिर से मजदूर वर्ग के संगठन में बदलने के पक्ष में अपना मत दिया था। नतीजतन लेनिन अकेले ही दूसरे इंटरनेशनल से

निकल आये और रूस में पहले-पहल समाजवादी क्रांति को कामयाब किया तथा तीसरे इंटरनेशनल का गठन किया। बाद में प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर दूसरे इंटरनेशनल के सुधार संबंधी अपने गलत विचार को समझकर कार्ल लिबनेख्ट दूसरे इंटरनेशनल से निकल आये और जर्मनी में नये सिरे से स्पार्टाकस नामक पार्टी का गठन किया। इसलिए कम्युनिस्ट आंदोलन के इतिहास से यह सबक लेकर ही हमने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, जो दरअसल एक पेटी-बुर्जुआ पार्टी के सिवा कुछ नहीं है, का सुधार करके उसे मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी में तब्दील करने का अवैज्ञानिक रास्ता नहीं अपनाया।

तीन धड़ों में विभाजित कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास क्रांति की रणनीति संबंधी मूल राजनैतिक लाइन के निर्धारण में निरंतर की गयी गलतियों का इतिहास

अब अपने देश की पहले की अविभाजित और मौजूदा तीन धड़ों में बंटी कम्युनिस्ट पार्टी के राजनैतिक सिद्धांत, जिसे वे अभी भी अपनाकर चल रहे हैं तथा अलग होने के बाद हर कोई अपने जिस मूल राजनैतिक सिद्धांत के सही होने का दावा कर रहा है, उसके चरित्र के बारे में विचार करके देखा जाये। एक खास अर्से में पार्टी को 'गाइड' करने वाली राजनैतिक लाइन को हम 'स्ट्रेटजी' या बुनियादी रणनीति कहते हैं। शुरू से आज तक इस पार्टी ने जितनी बार यह बुनियादी रणनीति या राजनैतिक सिद्धांत तय करने की कोशिश की, उतनी ही बार इसने गलती की, जिसकी चर्चा हम पहले भी कई बार विभिन्न लेखों में कर चुके हैं। फिर भी, आपके समझने की सहूलियत के लिए यहां विस्तृत व्याख्या या चर्चा में न जाकर मैं उसकी एक संक्षिप्त रूपरेखा आपके सामने पेश करना चाहता हूं।

साम्राज्यवाद-विरोधी राष्ट्रीय आजादी आंदोलन के जिस समय इस देश में कम्युनिस्ट नामधारी इस पार्टी का जन्म हुआ था, आप में से बहुत से लोग शायद यह जानते होंगे कि उस समय कांग्रेस आज की जैसी पूरी तरह बुर्जुआ वर्ग की पार्टी में तब्दील नहीं हुई थी। कोमिंटर्न के दस्तावेज में भी इस बात की स्वीकृति है। भारत की सभी राजनैतिक पार्टियां उस वक्त कांग्रेस के अंदर थीं। अर्थात आजादी आंदोलन के उस दौर में कांग्रेस का चरित्र कुछ हद तक एक प्लेटफार्म जैसा था।

राष्ट्रीय आजादी आंदोलन के उस दौर में कांग्रेस के अंदर राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व को अलग-थलग कर उस पर मजदूर वर्ग का नेतृत्व कायम करते हुए कांग्रेस को एक विशुद्ध साम्राज्यवाद-विरोधी जन-मोर्चे (Anti-imperialist People's Front) का रूप देने की पूरी-पूरी संभावना थी और इसकी कोशिश करते जाना मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी के लिए एक निहायत जरूरी काम था। लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी नामधारी इस पार्टी ने 1930 में तथाकथित रणदिवे ग्रुप के नेतृत्व में घोर संकीर्णतावादी नीति अपनाकर कांग्रेस के नेतृत्व में चलने वाले पूरे के पूरे आजादी आंदोलन को ही प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ आंदोलन करार दिया और उससे अपने को पूरी तरह अलग कर लिया। ट्रेड यूनियन आंदोलन में भी फूट पैदा करके इन्होंने अलग 'रेड ट्रेड यूनियन' का गठन कर लिया और इस तरह आजादी आंदोलन से अपने को अलग कर कांग्रेस में नेतृत्व करने वाले राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग को ही स्वतंत्रता आंदोलन पर नेतृत्व मजबूत करने में मदद की। सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि इसी तरह के आचरण से इन लोगों ने कम्युनिज्म को ही देशप्रेम की धारा से अलग कर दिया। नतीजा यह हुआ कि देशप्रेम की भावना रखने वाले अधिकांश लोग उसी दिन से कम्युनिज्म को कुछ शक की निगाह से देखने लगे।

इसके बाद 1934 में इन्होंने अपनी गलती स्वीकार की और सुधार के नाम पर एकदम उल्टी राह पकड़ ली। 1930 में जिस राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग को इन्होंने पूरी तरह प्रतिक्रियावादी समझ कर कांग्रेस द्वारा संचालित आजादी आंदोलन से अपने को एकदम अलग कर लिया था, 1934 में आकर वही प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ वर्ग इनके विचार से सिर्फ प्रगतिशील ही नहीं, बल्कि इतना प्रगतिशील और क्रांतिकारी हो गया कि इन्होंने उस बुर्जुआ वर्ग के साथ मजदूर वर्ग का राष्ट्रीय मोर्चा बनाने की जरूरत महसूस की और इस तरह मजदूर वर्ग एवं बुर्जुआ वर्ग के संयुक्त नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा बनाने का नारा देकर वस्तुतः प्लेखानोव के उस 'यूनाइटेड फ्रन्ट' के सिद्धांत को, जिसे लेनिन ने बहुत पहले ही नकार दिया था, इन्होंने भले ही घोषित रूप से नहीं, लेकिन कार्य रूप में ग्रहण किया। मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षा के अनुसार हम जानते हैं कि वर्ग-संघर्ष जितना ही विकसित होता जाता है, बुर्जुआ वर्ग

भी उतना ही प्रतिक्रियाशील होता जाता है। अर्थात जितने दिन बीतते जाते हैं, बुर्जुआ लोग भी वर्ग के रूप में उतने ही प्रतिक्रियावादी होते जाते हैं। लेकिन इस पार्टी की व्याख्या के अनुसार 1930 का घोर प्रतिक्रियाशील बुर्जुआ वर्ग 1934 में पहुंचते ही एकाएक प्रगतिशील हो गया! इस तरह इन्होंने अपनी भूल सुधारी!

'राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के अधिकार' के नाम पर मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग का सीपीआई द्वारा निर्लज्ज समर्थन

खैर, आपने देखा कि इस पार्टी के नेताओं ने 1930 में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से अपने को पूरी तरह अलग कर पहले तो बुर्जुआ वर्ग को राष्ट्रीय आजादी आंदोलन पर अपना नेतृत्व सुदृढ़ करने में मदद की; फिर बाद में 1934 में 'नेशनल फ्रन्ट' का फैसला लेकर बुर्जुआ वर्ग को साम्राज्यवाद-विरोधी लड़ाई में सिर्फ प्रगतिशील ही नहीं, यहां तक कि क्रांतिकारी के रूप में जनता के सामने पेश कर जनसाधारण की नजरों में उसकी इज्जत बढ़ा दी और राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व को और भी मजबूत करने में अधिकाधिक मदद पहुंचायी। इसी प्रक्रिया के चलते 1939 में आकर इन्होंने 'मुसलमान लोग धर्म के आधार पर ही एक राष्ट्र हैं'–इस तर्क पर मुस्लिम लीग द्वारा उठायी गयी पाकिस्तान की मांग को 'राष्ट्रों के आत्म निर्णय का अधिकार' करार देकर उसका समर्थन किया। इस तरह मार्क्सवाद के मशहूर और काफी प्रचारित 'राष्ट्रों के आत्म निर्णय के अधिकार' (Right of nations to self determination) संबंधी सिद्धांत को इन्होंने विकृत किया। इस विकृत समझदारी के आधार पर ही बाद में इन्होंने आजादी आंदोलन में कांग्रेस-मुस्लिम लीग एकता की आवाज उठायी। इन्होंने हल्ला मचाना शुरू किया कि कांग्रेस एवं लीग अर्थात कांग्रेसी नेतृत्व जिसका चरित्र पूंजीवादी-सामंती[1] (capito-feudalist) किस्म का था एवं मुस्लिम लीगी नेतृत्व जिसका चरित्र सामंती-पूंजीवादी[2] (feudo-capitalist) किस्म का

---

1. पूंजीवादी-सामंती–जिनमें पूंजीवादी रुझान ज्यादा होती है, लेकिन जो सामंती प्रभाव से मुक्त नहीं होते हैं।
2. सामंती-पूंजीवादी–जिनमें सामंती प्रभाव ज्यादा होता है, लेकिन जो आज के जमाने में पूंजीवाद को नकार नहीं सकते।

अर्थात जिसके अंदर धर्म का प्रभाव अधिक प्रबल था–इन दोनों नेतृत्वों में एकता हुए बिना भारत को आजादी कभी नहीं मिल सकेगी। इसके पुराने इतिहास का अगर आप संग्रह कर पाते, तो जान पाते कि उन दिनों कम्युनिस्ट नामवाली यह पार्टी एक ओर कांग्रेसी झंडा और दूसरी ओर मुस्लिम लीग का झंडा तथा बीच में लाल झंडा एक साथ बांधकर हजारों जुलूसों एवं सभाओं के माध्यम से 'कांग्रेस-लीग एक हो' के नारे से आसमान तक गुंजाती थी। 1930 की भूल को सुधारने का कैसा विचित्र रास्ता इन्होंने अपनाया था, यह तो आप निश्चय ही बखूबी समझ गये होंगे!

1942 के आंदोलन के इनके विरोध ने कम्युनिज्म को देशभक्ति की मुख्यधारा से अलग कर दिया

इसके बाद दूसरे महायुद्ध के समय, युद्ध के बारे में इनकी समझ या विश्लेषण जो भी हो, 1942 में जब सारे देश की आम जनता साम्राज्यवाद के खिलाफ बगावत की आग से धधक रही थी, तब इन्होंने उस पूरे आंदोलन को ही जापानी साम्राज्यवाद एवं फासीवाद की दलाली का आंदोलन कहकर उसका विरोध किया था। सिर्फ यही नहीं, बल्कि उस राष्ट्रीय उभार (national upheaval) के ऐन मौके पर 'जोशी-मैक्सवेल समझौते' के द्वारा, यह समझौता लिखित था या अलिखित–इस बात को तो उस वक्त के कम्युनिस्ट पार्टी के नेता लोग ही बता सकते हैं, इन्होंने फासीवाद को रोकने के नाम पर उस ब्रिटिश साम्राज्यवाद की ही दलाली की, जिसके खिलाफ देश की आम जनता आजादी की लड़ाई लड़ रही थी। इस घटना के फलस्वरूप देशप्रेम के पूरे आंदोलन (Whole patriotic movement) से ये अलग हो गये थे। सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि देशप्रेम की भावना (patriotic feelings) के सामने कम्युनिज्म की विचारधारा की इज्जत को इन्होंने बुरी तरह मटियामेट कर दिया था। आगे चलकर इसका कैसा खतरनाक नतीजा निकला था–यह उस वक्त के सभी कम्युनिस्ट नेता एवं कार्यकर्ता जानते हैं। आजकल के कार्यकर्ता शायद इसे ठीक से समझ भी नहीं पायेंगे।

पंडित नेहरू को समर्थन देने का आवेगपूर्ण आह्वान

इसके बाद 1947 में जब कांग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग ने साम्राज्यवाद से समझौता करके सत्ता की बागडोर हथियाई और नेहरू की अगुआई में राष्ट्रीय सरकार कायम हुई। तब एक बार पुनः पुरानी गलतियों को स्वीकार करके, हालांकि इन्होंने साफ-साफ नहीं बताया कि इनकी गलतियों का चरित्र क्या था, इन्होंने 'माउंटबैटन अवार्ड' को आगे की ओर एक कदम बताया था और 'नेहरू को पूरा समर्थन दो! जनता के जनवादी प्रजातंत्र का निर्माण करो!' (All support to Nehru; Build up People's Democratic Republic) की आवाज बुलंद की थी। उस वक्त कांग्रेस के अंदर जवाहरलाल और पटेल के बीच नेतृत्व का जो द्वन्द्व था, उसे आधार बनाकर जवाहर लाल को प्रगतिशील तथा पटेल को प्रतिक्रियावादी घोषित करके–जैसे वर्तमान में वे कांग्रेस के अंदर सिंडीकेट और इंडीकेट के बीच में विभाजन रेखा खींच रहे हैं–इन नामधारी कम्युनिस्टों ने कहा था कि पटेल इस्तीफा दें, नेहरू, तुम्हें इस्तीफा नहीं देना है, हम कम्युनिस्ट तुम्हारे साथ हैं (You Nehru not to resign; we Communists are behind you)। इसी तरह इन्होंने पंडितजी के नेतृत्व में प्रगतिशील राष्ट्रीय बुर्जुआ के साथ राष्ट्रीय जनतांत्रिक मोर्चा (National Democratic Front) बनाकर जनतांत्रिक पद्धति से 'नये जनतंत्र' की स्थापना के अजीबो-गरीब सिद्धांत का आविष्कार किया था।

रणदिवे नेतृत्व द्वारा गलतियों को स्वीकार करने का व्यर्थ प्रयास

1948 में आकर बहुत दिनों की उपरोक्त त्रुटिपूर्ण दक्षिणपंथी सुधारवादी राजनीति से पार्टी की रक्षा करने के महान उद्देश्य से रणदिवे का तथाकथित 'क्रांतिकारी गुट' फिर पार्टी के नेतृत्व में आया। पार्टी ने अतीत में जो गलतियां की थीं, उन सभी की एक लम्बी फेहरिस्त पेश करते हुए उन्होंने बहुत ही महत्वपूर्ण एवं अजीबो-गरीब किस्म की जिन दो गलतियों की चर्चा की, उनमें से एक यह है कि पार्टी में इतने दिनों तक जनवादी केन्द्रीयता थी ही नहीं। लेकिन न तो उन्होंने इस प्रश्न का जवाब दिया और न ही पार्टी कांग्रेस के प्रतिनिधियों में से किसी ने यह

सवाल उठाया कि आखिर जनवादी केन्द्रीयता के बिना भी यह पार्टी 20 वर्षों तक कम्युनिस्ट पार्टी रही कैसे? खैर, रणदिवे के विचार से, क्योंकि पार्टी के संविधान में ऐसी कोई धारा (clause) नहीं थी, जिसके अनुसार पार्टी की निचली पार्टी बॉडियों का कोई सदस्य सीधे केन्द्रीय कमेटी तक पहुंच सके, इसलिए पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता नहीं थी। अत: पार्टी संविधान में सिर्फ उस धारा को जोड़कर उन्होंने तुरंत पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता ला दी और एलान कर दिया कि पहले पहल पार्टी का बोल्शेविकीकरण हुआ (for the first time Bolshevised)। मगर देखा गया कि रणदिवे की यह 'बोल्शेवाइज्ड' पार्टी सिर्फ तीन साल के अंदर ही 'मेन्शेवाइज्ड' हो गयी और अजय घोष का नेतृत्व स्थापित होने के बाद पार्टी नेतृत्व के बयान के अनुसार मालूम हुआ कि रणदिवे के नेतृत्व में आने के पहले पार्टी में जो भी थोड़ी-बहुत जनवादी केन्द्रीयता थी, रणदिवे ने उसे भी खत्म कर पार्टी को पूरी तरह दिवालिया बना दिया था। दूसरी जो विचित्र गलती उन्होंने स्वीकार की थी, वह यह कि 1942 में पार्टी ने 'जनयुद्ध' का जो फैसला लिया था, वह ठीक ही था और साम्राज्यवादी युद्ध की तैयारी में लड़ाई के साजो-सामान बढ़ाने के ख्याल से उत्पादन को निर्बाध गति से बनाये रखने की पार्टी की नीति भी ठीक थी, मगर गलती यह हुई कि मालिक वर्ग के साथ मजदूर वर्ग का जो बुनियादी विरोध है, पार्टी उसे ही भूली हुई थी, अर्थात मालिक वर्ग और मजदूर वर्ग के बीच वर्ग संघर्ष के सिद्धांत को ही पार्टी भूल गयी थी! भूल स्वीकार के उस अनोखे दस्तावेज को पार्टी सम्मेलन में सीपीआई एवं वर्तमान सीपीआई (एम) के नामी-गिरामी नेताओं की मौजूदगी में ही मंजूर किया गया था। ताज्जुब की बात यह है कि इसके बाद भी यह पार्टी मजदूर वर्ग की पार्टी के नाम से इस देश में चलती आ रही है एवं कार्यकर्ता भी बिना किसी हिचकिचाहट के इसे मानते आ रहे हैं।

इन सारी लफ्फाजियों के बावजूद 1948 में कलकत्ता सम्मेलन में रणदिवे के तथाकथित 'क्रांतिकारी' गुट के नेतृत्व में लिये गये क्रांति के स्तर के निर्णय अर्थात रणनीति संबंधी निर्णय कुछ शब्दगत तफर्के और दाव-पेंच के हेर-फेर के सिवा मूलत: जोशी के जैसे ही रह गये। इनकी व्याख्या के मुताबिक भारतीय राजसत्ता का चरित्र 'अर्द्ध औपनिवेशिक'

और 'अर्द्ध सामंती' ही रह गया और क्रांति का मूल लक्ष्य भी साम्राज्यवाद–सामंतवाद विरोधी क्रांति ही रह गया। राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग को इन्होंने भी प्रगतिशील और क्रांति के मित्र वर्ग के रूप में माना। अर्थात निचोड़ में, क्रांति का स्तर जोशी के नेतृत्व के निर्णय के अनुरूप 'नव जनवादी क्रांति' का ही रह गया, सिर्फ उसका नाम बदलकर 'जनता की जनवादी क्रांति' कहा गया। और इस तरह की भूल सुधार के जरिये रणदिवे नेतृत्व ने जोशी की दक्षिणपंथी राजनीति से पार्टी को मुक्त किया! हां, तब इन्होंने जो नयी बात की, वह यह कि अपने पुराने उग्र वामपंथी रास्ते से इन्होंने एक बार फिर यह खोज लिया कि 'जनता एक नयी संग्रामी ताकत के रूप में उभर आयी है'–ठीक उसी तरह जैसे कि पश्चिम बंगाल में पिछले संयुक्त मोर्चे की सरकार के शासन काल में रणदिवे और प्रमोद दासगुप्ता के अनुसार नयी ताकतें उभरी थीं–एकाएक यह सिद्धांत खोज करके जनवादी आंदोलनों में विभिन्न तरीकों से धीरे–धीरे क्रांतिकारिता पैदा करने, मजदूर–किसानों के क्रांतिकारी वर्ग संघर्षों को तेज करने तथा इसके जरिये समझौतापरस्त ताकतों (compromising forces) को जनता से अलग–थलग कर जन आंदोलनों में मजदूर वर्ग का नेतृत्व कायम करने एवं मजदूर–किसानों के क्रांतिकारी संगठन बनाने से पहले ही इन्होंने राजसत्ता के खिलाफ सत्ता हथियाने की लड़ाई छेड़ दी।

लेकिन क्रांति के नाम से जब इन्होंने राजसत्ता के खिलाफ सीधी लड़ाई शुरू कर दी, तब 'जनता की जनवादी क्रांति' की रणनीति, अर्थात क्रांति का स्तर निर्धारण पार्टी कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कर लेने के बावजूद इन्होंने देखा कि दरअसल इन्हें बुर्जुआ वर्ग और बुर्जुआ राजसत्ता के खिलाफ ही लड़ना पड़ रहा है। इस परिस्थिति के दवाब से पार्टी कांग्रेस में तय की गयी मूल नीति की परवाह न करके अथवा यूं कहा जाये कि पार्टी कांग्रेस द्वारा स्वीकृत 'जनता की जनवादी क्रांति' के निर्णय को बिना बदले ही इन्होंने कहा–बुर्जुआ वर्ग और बुर्जुआ सरकार को खत्म किये बिना हम साम्राज्यवाद को खत्म नहीं कर सकते (we cannot fight imperialism without fighting the bourgeoisie and the bourgeois government)। इसके फलस्वरूप पार्टी के सिद्धांत (theory) और व्यवहार (practice) के बीच आपस में कोई संबंध ही नहीं रह गया। पार्टी

की कार्यशैली सिद्धांत से बिलकुल अलग (divorced from theory) हो गयी और अपने इस वक्तव्य के फलस्वरूप वे सैद्धांतिक रूप में भी एक नयी परेशानी में उलझ गये, क्योंकि अगर लड़ाई बुर्जुआ वर्ग और बुर्जुआ शासन-सत्ता से होती है, तो उसमें राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग की किसी किस्म की क्रांतिकारी भूमिका नहीं रह सकती और अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद की प्रधान विशेषता (dominant feature) नहीं हो, तो बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ वर्ग संघर्ष क्रांति के मूल द्वन्द्व के रूप में दिखाई नहीं दे सकता। अतः उस वक्त पार्टी में कृषि संबंधी बातों के सिद्धांतकार, बाद में संशोधनवादी एवं उन दिनों रणदिवे के एकदम दाहिने हाथ, भवानी सेन भारतीय कृषि में पूंजीवाद का प्रवेश किस तेजी से हो रहा है–इसके आंकड़े बताने लगे। हालांकि बाद में 1951 में अजय घोष का नेतृत्व कायम होने के बाद उसी सिद्धांतकार, भवानी सेन ने फिर यह साबित करने के लिए कि भारतीय कृषि में सामंतवाद कितनी मात्रा में मौजूद है–इसके पक्ष में पहले से ठीक उल्टे आंकड़े जुटाकर उनका प्रचार करना आरंभ कर दिया और आज भी करते जा रहे हैं।

खैर, रणदिवे की उग्र वामपंथी नीति जब पार्टी पर भारी आफत ले आयी, तब रणदिवे फिर से पार्टी के नेतृत्व से हटाये गये और कुछ दिनों के लिए राजेश्वर राव पार्टी के नेतृत्व में आये। उन्होंने भी क्रांति का स्तर साम्राज्यवाद-सामंतवाद-विरोधी जनता की जनवादी क्रांति का ही बताया। सिर्फ रणकौशल के (tactical) मामले में रणदिवे के साथ थोड़ा-बहुत अंतर देखा गया। चीन का अनुकरण करते हुए उन्होंने लगभग हू-ब-हू आज के नक्सलपंथियों जैसी देहाती इलाकों में 'गुरिल्ला युद्ध की लाइन' अपनायी। आज उन्हीं राजेश्वर राव को नक्सलपंथी लोग घोर संशोधनवादी कहा करते हैं। इसके बाद पहले जोशी की दक्षिणपंथी एवं रणदिवे-राजेश्वर राव की उग्र वामपंथी–इन दोनों ही लाइनों के खिलाफ जेहाद बोल कर अजय घोष का नेतृत्व आया। घोषणा की गयी कि पहले के दक्षिणपंथी अवसरवाद एवं वामपंथी अवसरवाद, इन दोनों से सीख लेकर इस मर्तबा पार्टी सही रूप में कम्युनिस्ट पार्टी में तब्दील हुई है! याद रहे कि उस दिन इस घोषणा से सहमत होने वालों में आज का सीपीआई (एम) नेतृत्व व नक्सलपंथी–तमाम लोग शामिल थे।

जोशी, रणदिवे, राजेश्वर राव और अजय घोष के बीच रणकौशल संबंधी भेद को छोड़कर आधारभूत सैद्धांतिक कोई भेद नहीं

अजय घोष के नेतृत्व में 1951 में मदुरई सम्मेलन में जो मूल सैद्धांतिक दस्तावेज पारित किया गया था, वह अगर रणकौशलगत बातों (tactical approach) को छोड़ दिया जाये, तो सैद्धांतिक तौर पर जोशी-रणदिवे-राजेश्वर राव वाले जैसा ही रह गया एवं राजसत्ता और मुल्क के मौजूदा हालात और क्रांति के स्तर के बारे में आज के नक्सलपंथियों की व्याख्या के साथ अगर उसकी तुलना की जाये, तो दोनों हू-ब-हू एक जैसे ही प्रतीत होंगे। उन्होंने भी भारत की क्रांति का वर्णन 'साम्राज्यवाद-विरोधी और सामंतवाद-विरोधी क्रांति' के रूप में ही किया था और भारतीय राजसत्ता को पूरी तरह साम्राज्यवाद का ताबेदार बताया था। आज के नक्सलपंथियों के साथ तफर्का सिर्फ इतना ही था कि भारतीय राजसत्ता को पूरी तरह साम्राज्यवाद का ताबेदार बताते हुए भी उन्होंने पार्लियामेंटरी चुनाव को सबसे अधिक महत्व देते हुए उसमें भाग लेने का निर्णय किया था।

अजय घोष के नेतृत्व द्वारा भारत की राजनैतिक आजादी के सवाल की व्याख्या आज के नक्सलपंथियों जैसी ही केवल 'नाम की आजादी' के रूप में करना एवं भारतीय राजसत्ता को 'पूरी तरह साम्राज्यवाद की एक कठपुतली राजसत्ता' कहने के फलस्वरूप कुछ ही दिनों में पार्टी के अंदर सिद्धांत और व्यवहार का स्व-विरोध (self contradiction) फिर से दिखाई दिया। उस वक्त भारत विभिन्न सम्मेलनों के माध्यम से नये स्वतत्रंता प्राप्त अफ्रो-एशियाई देशों को पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों के खिलाफ एकजुट करने की कोशिश में लगा हुआ था (जैसे कोलम्बो और बांडुंग सम्मेलन) दूसरी ओर सोवियत और चीन के साथ दोस्ताना ताल्लुक कायम करने का इसका झुकाव बढ़ रहा था। बांडुंग सम्मेलन में चीन के साथ इसकी दोस्ती कायम हो गयी, भारत और चीन के सम्मिलित प्रयास से पंचशील की नीति पैदा हुई एवं चीन तथा सोवियत यूनियन, दोनों ने ही भारत की शांति-नीति और साम्राज्यवाद-विरोधी नीति की खूब तारीफ की। ऐसी हालत में अपने मदुरई सम्मेलन में लिये गये क्रांति संबंधी सिद्धांत अर्थात पार्टी की रणनीति की एकदम

परवाह न करके वे अंधों की तरह–इनकी अंधानुकरण की आदत के बारे में मैंने पहले भी उल्लेख किया है–भारत की विदेश-नीति और शांति-नीति के समर्थक बन गये। नतीजा यह हुआ कि इनके मूल राजनैतिक सिद्धांत और पार्टी के व्यवहार-कर्म (practice) या रणकौशल के बीच बुनियादी विरोध दिखाई पड़ा। वह विरोध यह था कि अगर भारत की आजादी सिर्फ नाम की ही है और अगर भारत पूरी तरह साम्राज्यवाद की एक कठपुतली तथा साम्राज्यवाद के निर्देश पर ही चलने वाली राजसत्ता है, तो फिर इसकी यह स्वतंत्र विदेश नीति और स्वतंत्र शांति-नीति किस प्रकार हुई?

फलतः पार्टी की केन्द्रीय कमेटी की दिल्ली बैठक में आकर इन्होंने इस स्व-विरोध का एक समाधान निकालने की कोशिश की और अचानक खोज निकाला कि आर्थिक क्षेत्र में राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का प्रभाव लगातार बढ़ रहा है; आर्थिक क्षेत्र में साम्राज्यवाद के साथ राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का विरोध भी क्रमशः तीव्रतर हो रहा है एवं चूंकि भारतीय राजसत्ता और सरकार पर इस राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का प्रभाव क्रमशः बढ़ रहा है, जिसकी झलक नेहरू के नेतृत्व के मजबूत होने में देखी जा रही है, इसलिए भारत सरकार एवं भारतीय राजसत्ता के लिए स्वतंत्र विदेश नीति अपनाना संभव हो रहा है।

परिणामस्वरूप केन्द्रीय कमेटी की दिल्ली बैठक के बाद से ही ये भारतीय राज्य-व्यवस्था एवं सरकार में राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग की प्रमुखता की बात स्वीकारने लगे। अर्थात साफ तौर पर मुंह से न कहकर या लिखित रूप में न देकर भी वास्तव में इन्होंने एक स्वाधीन सार्वभौम राष्ट्रीय राजसत्ता की बात मान ली। परिस्थिति के दबाव से भारतीय राजसत्ता एवं सरकार में राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग की प्रधानता इन्हें जरूर स्वीकार करनी पड़ी, पर चूंकि सिद्धांततः ये स्वाधीन बुर्जुआ राजसत्ता नहीं मानते रहे अर्थात इनके लिए राजसत्ता का चरित्र, मदुरई कांग्रेस के विश्लेषण के अनुसार, 'साम्राज्यवाद की दलाल' का ही रह गया था, इसलिए केन्द्रीय कमेटी की दिल्ली बैठक में कुछ हद तक जोड़ना-जाड़ना संभव होने पर भी उस स्व-विरोध का, जिसका मैंने जिक्र किया है, किसी तरह हल नहीं हुआ।

केन्द्रीय कमेटी की दिल्ली बैठक के बाद पालघाट में पार्टी कांग्रेस हुई। वहां भी ये अपने बुनियादी राजनैतिक निर्णय के साथ व्यवहार के

स्व-विरोध को हल करने में पूरी तरह नाकाम रहे, क्योंकि पालघाट में लिये गये राजनैतिक प्रस्ताव की भी मूल बात–'साम्राज्यवाद-विरोधी सामंतवाद-विरोधी जनता की जनवादी क्रांति' की ही रह गयी। क्रांति के वर्ग-विन्यास के मामले में राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग को इन्होंने क्रांति के मित्र के रूप में ही आंका। सिर्फ भारत की स्वतंत्र शांति-नीति और विदेश-नीति को समर्थन देने के सिलसिले में चूंकि इन्होंने पहले ही माना था कि भारतीय राजसत्ता एवं सरकार में राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ रहा है, इसलिए भारत को पहले की तरह खुलकर साम्राज्यवाद का दलाल नहीं कहा। मगर इस बात को भी ये नहीं मान सके कि भारत एक स्वाधीन बुर्जुआ राज्य है, क्योंकि ऐसा मानने से फिर यहां की क्रांति 'जनता की जनवादी क्रांति' नहीं रह जाती। नतीजा यह हुआ कि ऐसी हालत में इन्होंने भारतीय राजसत्ता के चरित्र की एक गजब की व्याख्या गढ़ ली। इन्होंने कहा कि भारतीय राजसत्ता 'बड़े पूंजीपति वर्ग द्वारा संचालित पूंजीपति-जमींदार राजसत्ता' है (It is bourgeois landlord State headed by big bourgeoisie)।

पूंजीवाद के विकास के साथ-साथ राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग ही एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग में तब्दील हो जाता है

यहां यह सवाल स्वाभाविक रूप से पैदा होता है कि भारत की यह कथित पूंजीपति-जमींदार राजसत्ता जिस बड़े पूंजीपति वर्ग द्वारा प्रभावित है, वह बड़ा पूंजीपति वर्ग है कौन? इसके जवाब में इन्होंने कहा कि उस बड़े पूंजीपति वर्ग में वे सब एकाधिकारी पूंजीपति आते हैं, जो साम्राज्यवाद से मिलकर काम करने का गठबंधन (collaborate) किये हुए हैं। अतः उनकी लड़ाई उस एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग और सामंतवाद के खिलाफ है–राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ नहीं। अर्थात इन्होंने एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग को साम्राज्यवाद का सहयोगी (collaborator) मानते हुए राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग को अलग माना। अब सवाल यह है कि अगर इस एकाधिकार पूंजी का जन्म भारत में हुआ हो, जिसे ये भी स्वीकार करने को बाध्य हो रहे हैं, तो यह एकाधिकारी पूंजी आखिर आयी कहां से? क्या यह आकाश से टपकी है? लेनिन ने अपनी किताब 'साम्राज्यवाद–पूंजीवाद की चरम अवस्था' में स्पष्ट रूप

से दिखा दिया है कि पूंजीवाद सभी मुल्कों में दो अन्तर्निहित प्रवृत्तियों को लेकर आता है। पहली तो यह कि पूंजीवाद का चरित्र राष्ट्रवादी रहता है एवं एक सार्वभौम राष्ट्रीय राजसत्ता की स्थापना के लिए वह संघर्ष करता है। दूसरी यह कि पूंजीवाद के विकास के रास्ते राष्ट्रीय पूंजी ही एकाधिकारी पूंजी को जन्म देती है, पूंजीवाद हो जाता है कॉस्मोपोलिटन और पूंजीवाद के विकास के इस स्तर में आकर पूंजीवाद साम्राज्यवादी चरित्र हासिल कर लेता है। इस तरह लेनिनवाद के अनुसार पूंजीवाद के विकास के रास्ते राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग ही एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग में बदल जाता है। अगर यह बात मान्य है कि भारत में एकाधिकार पूंजी का जन्म हो चुका है, तो मार्क्सवाद–लेनिनवाद के अनुसार यह भी मानना ही होगा कि पश्चिम के धनाढ्य और परम्परागत साम्राज्यवादी मुल्कों की तुलना में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के मायने में अपेक्षाकृत कमजोर और पिछड़ा मुल्क होने पर भी भारत में सिर्फ राष्ट्रीय पूंजी का जन्म ही नहीं हुआ है, बल्कि यह पूंजी इस दौरान विकास के रास्ते एकाधिकारी पूंजी को जन्म देकर खुद ही साम्राज्यवादी चरित्र हासिल कर चुकी है। ऐसी हालत में बड़े पूंजीपति वर्ग अर्थात एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग (big bourgeoisie) ही राजसत्ता पर आधिपत्य रखता है–इस बात का मार्क्सवाद–लेनिनवाद के मुताबिक मतलब यही निकलता है कि राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग ही भारतीय राजसत्ता के नेतृत्व में है। तो फिर इस बात को मानने से किस प्रकार इनकार किया जा सकता है कि आज की खास राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में भारतीय राजसत्ता एक स्वाधीन सार्वभौम राष्ट्रीय राजसत्ता का ही चरित्र रखती है।

राजसत्ता पर मजबूती से काबिज है भारतीय राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग और यही कर रहा है राजसत्ता का नेतृत्व

द्वितीय:, भारतीय राजसत्ता के चरित्र की व्याख्या करते हुए इन्होंने कहा है कि बड़े पूंजीपति (big bourgeoisie) अर्थात एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग जो भारतीय राजसत्ता के नेतृत्व में है, वह इनके विचार से राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग नहीं है, बल्कि साम्राज्यवाद का ताबेदार तथा दलाल बुर्जुआ वर्ग है। लेकिन फिर ये ही कहते हैं कि आर्थिक क्षेत्र में

भारत के राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग की साम्राज्यवाद से टक्कर तीव्र हो रही है और राजसत्ता व सरकार पर राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का प्रभाव भी काफी बढ़ रहा है एवं इसी की झलक खुद भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल के नेतृत्व में भारतीय राजसत्ता की साम्राज्यवाद-विरोधी स्वतंत्र शांति नीति और स्वतंत्र विदेश नीति में पायी जा रही है। अगर राजसत्ता पर राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का ही प्रभाव और नेतृत्व है एवं राजसत्ता का चरित्र 'बड़े पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व में पूंजीवादी-जमींदार राजसत्ता' का है, तब तो जिसे ये 'बड़ा पूंजीपति वर्ग' कहते हैं, वह बड़ा पूंजीपति वर्ग ही इनकी व्याख्या के मुताबिक भी दरअसल राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग है, जो भारतीय राजसत्ता पर काबिज है।

भारतीय एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्यवादी 'ट्रस्ट व कार्टेल' का जूनियर पार्टनर

तृतीयतः, इस एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग को ये साम्राज्यवाद का दलाल एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग के रूप में चित्रित करते हैं, जबकि साम्राज्यवाद संबंधी मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धांतों की थोड़ी-सी भी जानकारी रहने से ये इस बात को आसानी से समझ पाते कि भारत की एकाधिकार पूंजी का चरित्र अगर साम्राज्यवाद के दलाल का चरित्र होता, तब तो साम्राज्यवाद के दलाल बुर्जुआ वर्ग के लिए एकाधिकारी पूंजीपतियों के अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों, इंटरनेशनल ट्रस्टों एवं कार्टेलों (international trusts and cartels) का सदस्य होना नामुमकिन होता। लेकिन यह हकीकत है कि भारतीय एकाधिकारी पूंजीपति इन सब संगठनों (ट्रस्टों एवं कार्टेलों) में शरीक हैं; भले ही छोटे हिस्सेदार हैं, लेकिन शरीक हैं और प्रतियोगी भी हैं, इसमें शक नहीं। इस तरह यह साफ है कि भारतीय राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग ही विकास करते हुए एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग में तब्दील हुआ और आज भारतीय राजसत्ता का कर्णधार बनकर शोषित जनता की मुक्ति के रास्ते में मुख्य बाधा के रूप में खड़ा है।

क्रांति की मित्र-शक्ति राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग हो, तो वह क्रांति कदापि मौजूदा राजसत्ता को उखाड़ फेंकने की क्रांति नहीं होगी

ऐसी हालत में एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग के खिलाफ लड़ाई कहने

से राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ लड़ाई ही समझी जाती है। इस प्रकार जहां राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग ही क्रांति का मुख्य दुश्मन है और जहां राष्ट्रीय बुर्जुआ राजसत्ता को ध्वस्त कर ही क्रांति कामयाब होनी हो, वहां फिर वही राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग क्रांति की मित्र-शक्ति कैसे बन सकता है—यह तो सिर्फ उस पार्टी के सिद्धांतकार ही बता सकते हैं, दूसरा कोई नहीं। यह बात किसी सच्चे मार्क्सवादी-लेनिनवादी की समझ से बाहर है। यह विचारणीय बात हो सकती है कि इस मुल्क में एकाधिकारी पूंजी के साथ छोटी पूंजी (small production) का जो द्वन्द्व है, उसका फायदा उठाते हुए छोटी पूंजी को किस तरह क्रांति के हित में इस्तेमाल किया जा सकेगा, जो कि सभी मुल्कों में क्रांतिकारी लोग किया करते हैं। इसके रणकौशलगत पहलू को लेकर मतांतर हो सकता है। किन्तु यह बात इस प्रश्न से बिलकुल अलग है, जो राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग में तब्दील हो चुका है और मूलतः जिसके खिलाफ ही इस देश में क्रांति संगठित करनी होगी, वह राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग एक वर्ग के तौर पर किसी भी तरह क्रांति की मित्र-शक्ति नहीं बन सकता। इसके बाद भी इनकी व्याख्यानुसार अगर राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग इनकी क्रांति की मित्र-शक्ति रह ही जाता है, तो यही समझना होगा कि इनकी कथित क्रांति का उद्देश्य मौजूदा राजसत्ता को ध्वस्त करना कतई नहीं है। इससे निकलने वाला यह नतीजा कि ऐसी हालत में इनके कथित क्रांतिकारी कार्यक्रम का तात्पर्य असल में राष्ट्रीय बुर्जुआ राजसत्ता के पार्लियामेंटरी चुनाव-कार्यक्रम के सिवा और कुछ नहीं रह जाता है और यह कि इनकी क्रांति के सिद्धांत की बातें महज लफ्फाजी और निरर्थक नारे बनकर रह जाती हैं—इस बात को भी इनकी पार्टी के कार्यकर्ता और सिद्धांतकार नहीं पकड़ पाये।

अतः देखा गया कि इनके सिद्धांत के साथ व्यवहार का जो स्व-विरोध मदुरई कांग्रेस के बाद से इनके आचरण में दिखलाई देने लगा था और जो स्व-विरोध 1948 में रणदिवे के नेतृत्वकाल में राजसत्ता के खिलाफ सीधी लड़ाई करते समय और भी प्रकट होकर सामने आया था, पालघाट कांग्रेस में भी ये उसका कोई हल नहीं निकाल सके। पालघाट के बाद अमृतसर कांग्रेस में जब इन्होंने एक कदम और भी आगे बढ़कर एलान कर दिया कि बुर्जुआ वर्ग के साथ

'राष्ट्रीय फ्रंट' बनाकर शांतिपूर्ण ढंग से, यहां तक कि पार्लियामेंटरी तरीके से जनता की जनवादी क्रांति सफल करनी होगी–तो इस स्व-विरोध का सवाल और भी ज्यादा खुलकर सामने आया, क्योंकि इस घोषणा के द्वारा इन्होंने खुल्लमखुल्ला भारतीय पार्लियामेंट की भूमिका को एक स्वतंत्र और सचेत भूमिका के रूप में मान लिया। मगर न तो इन्होंने भारतीय राजसत्ता को एक सार्वभौम बुर्जुआ राजसत्ता के रूप में माना और न इस बात की ही व्याख्या की कि एक सार्वभौम बुर्जुआ राजसत्ता हुए बगैर उसकी पार्लियामेंट की इस तरह की स्वाधीन भूमिका कैसे हो सकती है? अमृतसर कांग्रेस में भी भारतीय राजसत्ता के चरित्र के बारे में इनकी व्याख्या यही रही कि यह 'बड़े पूंजीपतियों' के नेतृत्व में पूंजीवादी-जमींदार राजसत्ता है (bourgeois-landlord state headed by big bourgeoisie) एवं क्रांति का स्तर भी 'जनता की जनवादी क्रांति' ही रह गया।

सीपीआई से टूटकर सीपीआई (एम) के बनने में कोई आधारभूत सैद्धांतिक प्रश्न शामिल नहीं

इस स्व-विरोध को लेकर चलते हुए बाद में चीन-भारत सीमा संघर्ष को लेकर पार्टी के अंदर संकट दिखाई दिया। हालांकि पार्टी के अंदर विभिन्न गुटों का झगड़ा तो पहले से ही था। रणदिवे के नेतृत्व में चलने वाले तथाकथित 'क्रांतिकारी गुट' ने, जिसे अजय घोष के नेतृत्व के समय में एवं अजय घोष की मृत्यु के बाद डांगे के नेतृत्व के समय में दबा दिया गया था, जब देखा कि चीन-भारत सीमा संघर्ष के मसले पर पार्टी के सदस्यों की अंतर्राष्ट्रीयतावादी भावना के आधार पर सदस्यों के एक बड़े हिस्से को पार्टी से निकाल लाना और अपने नेतृत्व में नयी पार्टी बना लेना संभव है, तो वह 'डांगे गुट' और 'जोशी गुट' के खिलाफ संशोधनवादी होने का आरोप लगाकर पार्टी से निकल आया और सीपीआई (एम) के नाम से नयी पार्टी का गठन किया। इस सीपीआई (एम) के बनने के पहले तक इनकी पार्टी के इतिहास की चर्चा मैंने आपके सामने की और आपने देखा कि सीपीआई (एम) के आज के सभी नेता पुरानी पार्टी की उन सारी बातों के लिए जिम्मेदार हैं, क्योंकि वे उन सारी बातों से सहमत (committed) थे। खैर, 1964

में जिस बुनियादी सैद्धांतिक विरोध की बात करके सीपीआई (एम) के नेता सीपीआई से निकल आये थे और नयी पार्टी गठित की थी, क्या वह वाकई बुनियादी सैद्धांतिक विरोध था या कि पहले की ही तरह कुछ दाव-पेंच (tactics) के सवाल पर या शब्दावली पर विरोध का अंतर खड़ा करके और उसी को बुनियादी सैद्धांतिक विरोध कहकर चलाने की उन्होंने कोशिश की थी? इन पर विचार करके देखा जाये।

कलकत्ता में हुई सीपीआई (एम) की पहली कांग्रेस में भी, जिसे उन्होंने पुरानी पार्टी की निरंतरता (continuation) में सातवीं कांग्रेस घोषित की, भारतीय राजसत्ता के चरित्र की व्याख्या करते हुए संशोधनवादियों की ही तरह कहा गया, 'यह बड़े पूंजीपतियों के नेतृत्व में एक पूंजीवादी-जमींदार राजसत्ता है'। इनकी पार्टी-कांग्रेस में लिया गया क्रांति का सिद्धांत भी ठीक पहले के जैसा ही 'साम्राज्यवाद और सामंतवाद-विरोधी जनता की जनवादी क्रांति' का सिद्धांत रह गया। क्रांति के वर्ग-विन्यास के मामले में इन्होंने भी राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग और धनी किसान अर्थात ग्रामीण जोतदार वर्ग को क्रांति की मित्र-शक्ति माना। यहां तक कि इनकी कलकत्ता कांग्रेस में लिये गये राजनैतिक प्रस्ताव में इन्होंने भारतीय परिस्थिति में शांतिपूर्ण तरीके से क्रांति की संभावना का भी जिक्र किया। मतभेद सिर्फ इस बात पर था कि यह राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग है कौन, अर्थात कांग्रेस के अंदर राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग है या नहीं, इसके हिसाब-किताब में कुछ मतभेद दिखाई दिया। सीपीआई सोचती थी कि कांग्रेस पार्टी के अंदर जवाहर लाल के नेतृत्व में जो लोग संगठित हैं, वे ही राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। सीपीआई (एम) के नेताओं ने कहा कि पूरी कांग्रेस पार्टी ही साम्राज्यवाद की दलाल, सहयोगी (collaborator) तथा एकाधिकारी पूंजीपतियों का संगठन है; उसमें राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग है ही नहीं। मगर कांग्रेस के अंदर अगर राष्ट्रीय बुर्जुआ न रहे, तो यह राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग है कौन और उसका राजनैतिक संगठन ही कौन सा है—इस संबंध में सीपीआई (एम) के नेताओं ने कुछ भी नहीं कहा। दूसरी ओर, मुंह से या लिखित रूप में स्वीकार नहीं करने पर भी स्वाधीन राजसत्ता के अस्तित्व को वस्तुतः इन्होंने भी सीपीआई की तरह ही मान लिया और जिस राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग को सीपीआई तथा सीपीआई (एम), दोनों ने ही 'क्रांति' की

मित्र–शक्ति एवं प्रगतिशील माना, उसी राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के साथ 'नेशनल फ्रंट' होगा या विभिन्न मुद्दों के आधार पर 'युनाइटेड फ्रंट' होगा–इस बात पर पार्टी के विभाजन के समय सीपीआई के साथ सीपीआई (एम) का तथाकथित 'गंभीर मौलिक' मतभेद था!

इस तरह हम देखते हैं कि राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग कौन है और कौन नहीं, इसको तय करने में सीपीआई (एम) के नेताओं ने भी पालघाट कांग्रेस के संशोधनवादियों की तरह ही एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग को साम्राज्यवाद के दलाल, बड़े पूंजीपति (big bourgeoisie) का नाम देकर उससे राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग को अलग बताया। लेकिन मैंने आपके सामने चर्चा कर दिखलाया है कि ये बड़े पूंजीपति ही, जिन्हें ये लोग साम्राज्यवाद का साझेदार, दलाल, एकाधिकारी पूंजीपति कहते हैं, असल में वही राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग है जो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास के रास्ते खुद एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग में तब्दील हो गया है। अतः इस राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग को क्रांति की मित्र–शक्ति के रूप में आंकने के फलस्वरूप इनकी (सीपीआई (एम) का) क्रांति भी असल में सीपीआई की क्रांति की तरह ही केवल नाम की क्रांति होगी और इसलिए क्रांति की बड़ी–बड़ी बातें करते हुए भी ये अमल में पार्लियामेंटरी राजनीति ही करते जायेंगे, जो इनके आचरण से इसी बीच जाहिर हो रहा है। ये जिस कांग्रेस पार्टी को साम्राज्यवाद का ताबेदार, बिल्कुल प्रतिक्रियाशील कह रहे हैं। आगे चलकर उसी कांग्रेस के अंदर से ये प्रगतिशील बुर्जुआ वर्ग को ढूंढ़ निकालेंगे और वक्त व मौके के मुताबिक कभी उससे हाथ मिलायेंगे तो कभी उसका विरोध करते जायेंगे।

बाद में सीपीआई (एम) के नेताओं ने अपने बर्धमान प्लेनम में यह माना है कि भारतीय राजसत्ता और सरकार में राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का प्रभाव बढ़ रहा है। कांग्रेस पार्टी जब इण्डिकेट और सिण्डिकेट–इन दो भागों में बंट गयी, तो इन्होंने इन्दिरा कांग्रेस को सिण्डिकेट की तुलना में प्रगतिशील माना, इन्दिरा द्वारा किये बैंकों के राष्ट्रीयकरण को 'प्रगतिशील काम' और 'आगे की ओर एक कदम' घोषित किया और यहां तक कहा कि इन्दिरा कांग्रेस में एकाधिकारी पूंजी–विरोधी जन–समर्थक जनवादी ताकतें बढ़ रही हैं। इसके अलावा, पार्टी से निकल आने के बाद नक्सलपंथियों ने जब 1951 के मदुरई दस्तावेज के समान ही

'जनता की जनवादी क्रांति' का सिद्धांत पेश करते हुए भारतीय राजसत्ता के चरित्र को 'अर्द्ध-औपनिवेशिक तथा अर्द्ध-सामंती' (semi-colonial and semi-feudal) बताया और वे यह कहने लगे कि 'यह आजादी केवल नाम की ही है', तो उनका विरोध करते हुए रणदिवे ने अपने एक लेख में लिखा कि स्वाधीनता संग्राम में जिस राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग ने नेतृत्व दिया था, वही राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग वर्तमान भारतीय राजसत्ता का कर्णधार है। अर्थात भारत को उन्होंने एक 'अर्द्ध-औपनिवेशिक, अर्द्ध-सामंती' राजसत्ता की बजाय राष्ट्रीय राजसत्ता के रूप में मान लिया। एक स्वतंत्र राष्ट्रीय राजसत्ता असल में एक स्वाधीन, सार्वभौम, बुर्जुआ राजसत्ता के सिवा और क्या हो सकती है? मगर फिर भी उन्होंने कहा–'हमारे इंकलाब का उद्देश्य साम्राज्यवाद-विरोधी, सामंतवाद-विरोधी ही है'। एक तरफ तो यह मान लेना कि राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग ही राजसत्ता का कर्णधार है और दूसरी तरफ उसी को राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग को अपनी 'जनता की जनवादी क्रांति' की मित्र-शक्ति के रूप में आंकने के फलस्वरूप स्वाभाविक तौर पर यह सवाल पैदा होता है कि इनकी 'जनता की जनवादी क्रांति' अगर सही मायने में उस राजसत्ता को ध्वस्त करने की क्रांति हो, जिसका कर्णधार, जैसा कि रणदिवे ने खुद कहा, राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग है, तब फिर राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग तथा धनी किसान को किस प्रकार उस क्रांति की मित्र-शक्ति कहा गया? इस प्रश्न का उत्तर केवल रणदिवे के नेतृत्व में उनके 'क्रांतिकारी गुट'(!) जैसे सिद्धांतकार ही दे सकते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि मूल सैद्धांतिक मसलों पर अर्थात क्रांति के स्तर-निर्णय, राजसत्ता के वर्ग चरित्र के निर्धारण एवं क्रांति के वर्ग-विन्यास के मामलों में पार्टी-विभाजन के समय सीपीआई के साथ सीपीआई (एम) का कोई खास बुनियादी अन्तर नहीं था और आज भी नहीं है।

पार्टी विभक्त होने के समय एक और मतभेद की बात इन्होंने उठायी थी और जोर-शोर से उसका प्रचार किया था। वह यह कि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सीपीआई (एम) के अनुसार सोवियत यूनियन संशोधनवादी हो चुका है एवं यह कि चीन ही सही क्रांतिकारी लाइन पर चल रहा है। इसलिए पार्टी-विभाजन के समय वे चीन-पंथी हो गये थे। लेकिन आज वे उस हालत में नहीं हैं। सीपीआई (एम) के

मतानुसार चीन 14 जून की चिट्ठी तक ठीक था, मगर उसके बाद चीन भी भटक गया है। सीपीआई (एम) के विचार से आज चीन कट्टरवादी (dogmatist) है, वहां माओ-पूजा के रूप में व्यक्ति पूजा चल रही है, जिसके साथ मार्क्सवाद का कोई ताल्लुक नहीं है। ठीक जिस तरह से संशोधनवादी लोग कहा करते हैं, करीब-करीब उसी तरह थोड़ा-सा घुमा-फिरा कर ये लोग भी कहते हैं, सिर्फ शब्दों के चयन में सावधानी बरतते हैं ताकि रैंक एण्ड फाइल अर्थात आम पार्टी सदस्य पकड़ न सकें कि इनकी अभिव्यक्ति भी संशोधनवादियों जैसी ही है। अभी ये तटस्थता की हालत में हैं—अर्थात चीन या सोवियत संघ किसी के पक्ष में नहीं हैं। लेकिन ऊपर से संशोधनवाद के खिलाफ जितनी भी कठोर बातें ये क्यों न कहें और डांगे के विरुद्ध जितना भी हल्ला क्यों न करें, जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, असल में ये भी भीतर-भीतर सोवियत संघ के साथ मित्रता करने की कोशिश कर रहे हैं। मगर बाहर से सीपीआई का विरोध और अंदर से 'रैंक एण्ड फाइल' अर्थात आम पार्टी सदस्यों के विरोध के चलते ये इस दिशा में ज्यादा आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। संशोधनवाद के खिलाफ लड़ाई की बड़ी-बड़ी बातें करते हुए भी वास्तव में ये यूरोप की कुछ ऐसी पार्टियों से सांठगांठ कर रहे हैं, जो संशोधनवादी दृष्टिकोण के मामले में सोवियत यूनियन से भी ज्यादा दक्षिणपंथी हैं, जैसे कि रोमानिया की पार्टी। ऐसी पार्टियों के साथ इन्होंने न सिर्फ संबंध ही स्थापित किये हैं, बल्कि आपस में एक-दूसरे की खूब तारीफ भी किया करते हैं। फिर भी इनके अनुसार डांगेपंथी संशोधनवादी हैं!

इस तरह आप देख रहे हैं कि पार्टी के विभाजन के समय सीपीआई (एम) के नेताओं ने मूल सैद्धांतिक विरोध की जो तमाम बड़ी-बड़ी बातें कहकर नयी पार्टी बना ली थी, असल में वह कोई खास सैद्धांतिक विरोध नहीं था। मूलतः गुटबाजी के झगड़े के चलते ही कुछ शब्दों का हेर-फेर कर और रणकौशल के मामले में कुछ अंतर पैदा करके इन्होंने नयी पार्टी बना ली थी। दैनिक राजनैतिक आंदोलन के क्षेत्र में आपसी विरोध के आधार पर स्थानीय दाव-पेंच के सवाल को छोड़ सीपीआई के साथ सीपीआई (एम) के रणकौशल संबंधी (tactical) लाइनों का वह मामूली-सा अंतर भी आज लगता है नहीं रह गया है।

सीपीआई (एम) नव संशोधनवादी पार्टी बन गयी, क्योंकि इसने पुरानी पार्टी की गैर-मार्क्सवादी चिंतन प्रक्रिया और विश्लेषण पद्धति का ही अनुसरण किया

इसके अलावा क्रांतिकारी सिद्धांत की नींव पर एक सही कम्युनिस्ट पार्टी बनाने के लिए इन्हें सबसे पहले अपनी चिंतन-प्रक्रिया में सीपीआई की संशोधनवादी एवं गैर-मार्क्सवादी चिंतन पद्धति के साथ संबंध-विच्छेद करना जरूरी था, पार्टी-निर्माण के समय ये इस महत्वपूर्ण तथ्य को पकड़ ही नहीं पाये। वजह यह थी कि ये मानकर ही चले थे कि इनकी पार्टी ही सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी है। शायद इसलिए इन्होंने इस बात का कोई विज्ञान-संगत और मार्क्सवाद-संगत स्पष्टीकरण करने की जरूरत नहीं समझी कि संशोधनवादी व गैर-मार्क्सवादी पुरानी कम्युनिस्ट पार्टी के अंदर 35-36 साल के लम्बे अर्से तक उनकी चिंतन-पद्धति, शिक्षा, संस्कृति, राजनैतिक जीवन और विचारधारा गठित होने के बावजूद ये नेता और कार्यकर्ता पुरानी पार्टी की उसी संशोधनवादी और गैर-मार्क्सवादी चिंतन-प्रक्रिया में ही रहकर किस प्रकार सच्चा कम्युनिस्ट चरित्र हासिल कर सके तथा उसे बनाये रख सके? इन्होंने जो नयी पार्टी बनायी, उसकी चिंतन-पद्धति में पुरानी पार्टी की गैर-मार्क्सवादी चिंतन-प्रक्रिया से संबंध-विच्छेद नहीं किये जाने के कारण तथा मजदूर वर्ग की सही क्रांतिकारी पार्टी के संगठन के लिए जो तीन काम सबसे पहले करने चाहिए थे, जो मैं पहले ही आपको बता चुका हूं, उस प्राथमिक परन्तु कष्टप्रद संघर्ष को नहीं चलाकर संशोधनवादी पार्टी की चिंतन-प्रक्रिया के जरिये बनी पुरानी पार्टी के नेताओं और कार्यकर्ताओं को लेकर जल्दबाजी में एक पार्टी बना लेने के फलस्वरूप चिंतन-विचार के मामले में इनमें भी पुरानी पार्टी की मानसिकता और चिंतनधारा ही काम करती रही। इसलिए इनके क्रांतिकारी सैद्धांतिक निर्णय भी सिर्फ यहां-वहां थोड़े बहुत वाक्-चातुर्य और रणकौशल संबंधी (tactical) अंतर को छोड़कर मूलत: पुरानी पार्टी के तथाकथित क्रांतिकारी सिद्धांत के समान ही रह गये। इसी तरह यह पार्टी भी एक नयी संशोधनवादी पार्टी में तब्दील हो गयी है। कितनी भी कोशिश क्यों न की जाये, संशोधनवाद की राह पर चल रही इस पार्टी को भी सुधार कर मजदूर वर्ग की सही क्रांतिकारी पार्टी में तब्दील कर पाना पुरानी पार्टी की तरह ही नामुमकिन है।

रणकौशल और शब्दावली के सिवा नक्सलवादियों का सीपीआई की पुरानी मदुरई थीसिस से कोई बुनियादी फर्क नहीं

अब नक्सलपंथियों के बारे में कुछ बातें आपको बता देना आवश्यक है। सीपीआई (एम) के वर्तमान नेता सिर्फ ग्रुपों के झगड़े के आधार पर पार्टी के कार्यकर्ताओं में क्रांति के लिए जो आकुलता थी, उसे खामखाह और भी जगाकर अच्छी संख्या में कार्यकर्ताओं को पार्टी से बाहर निकाल लाने तथा नयी पार्टी बना देने के बाद जब पार्लियामेंटरी राजनीति की निश्चित शरण में बहने लगे, तब क्रांति के लिए कार्यकर्ताओं की उस असहनशील आकुलता ने ही नक्सलपंथियों को जन्म दिया है।

लेकिन सीपीआई (एम) से निकलकर ये लोग भी क्रांति के मूल सिद्धांत को तय करने में भारत की वास्तविक हालत को अस्वीकार करके पुरानी संशोधनवादी पार्टी की तरह जनता की जनवादी क्रांति के ही सिद्धांत को लेकर चल रहे हैं। इनकी व्याख्यानुसार भारत को राजनैतिक आजादी ही नहीं मिली और वर्तमान आजादी केवल नाम की है। इनके मत से भारत एक अर्द्ध औपनिवेशिक, अर्द्ध सामंती राजसत्ता है और यहां साम्राज्यवादियों के संरक्षण में साम्राज्यवाद के दलाल (कम्प्राडोर) बुर्जुआ वर्ग एवं सामंती मालिक ही सरकार चलाते हैं। अर्थात इनकी क्रांति का सिद्धांत भी रणकौशल के सवाल पर और शब्दों के थोड़े-से अंतर के सिवा 1951 में मदुरई में तय किये गये क्रांति के सिद्धांत की तरह ही है। हद दर्जे के संशोधनवादी अजय घोष के नेतृत्व में लिये गये मदुरई दस्तावेज को ही ये सही क्रांतिकारी लाइन कहकर तथा चीन की दुहाई देकर पुनः चलाने की कोशिश कर रहे हैं। केवल रणकौशल के मामले में मदुरई दस्तावेज से इनका जो फर्क है, उस पर भी अगर आप गौर करेंगे, तो देखेंगे कि यह भी मूलतः राजेश्वर राव के थोड़े दिनों के नेतृत्व के समय अपनाये गये रणकौशल के ही अनुरूप है। ऐसा इसलिए हो रहा है कि इन्होंने भी पुरानी कम्युनिस्ट पार्टी की चिंतन प्रक्रिया से पैदा हुए अंधानुकरण की आदत की वजह से चीन का हू-ब-हू अनुकरण करके भारत की क्रांति की लाइन निर्धारित की है। इन्होंने इस देश की वास्तविक परिस्थिति, घटनाओं एवं आंदोलनों के बारे में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को बढ़ा-चढ़ा कर रिपोर्ट

देकर उसे भी भारत की क्रांति के स्तर के संबंध में गलत निर्णय पर पहुंचने में सहायता की है।

लेकिन क्रांति से पहले के चीन की आर्थिक स्थिति और मौजूदा भारत की आर्थिक स्थिति क्या एक है? चीनी क्रांति के महान नेता माओ त्से-तुंग की व्याख्यानुसार क्रांति के पहले चीन की अर्थव्यवस्था मूलत: एक अर्द्ध-औपनिवेशिक, अर्द्ध-सामंती, स्थानीय आत्मनिर्भर कृषि-अर्थव्यवस्था थी। अर्थात अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में पूंजीवाद द्वारा विकास करते हुए साम्राज्यवादी चरित्र हासिल करने की बात तो दूर रही, चीन में उस समय राष्ट्रीय पूंजी का विकास भी अच्छी तरह नहीं हो पाया था।

वहां पूंजीवाद उस समय नया विकास ही कर रहा था। अर्थात राष्ट्रीय पूंजी का वहां अभी हाल ही में जन्म हुआ था। इसलिए उसे साम्राज्यवाद एवं सामंतवाद के खिलाफ लड़ाई करके ही विकसित होना पड़ रहा था। यही वजह है कि साम्राज्यवाद-सामंतवाद विरोधी क्रांति में चीन के राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग की भी प्रगतिशील भूमिका थी। राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग कहने से चीन में उस समय किसे समझा जाता था? चीन की क्रांति के स्तर के बारे में चर्चा करते हुए माओ त्से-तुंग ने वहां के शहरी मध्यम वर्ग (urban middle class) को राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग कहा है एवं चेन पो-ता की किताब, 'थर्टी इयर्स ऑफ कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ चाइना' (Thirty years of Communist Party of China) में भी आप इसका उल्लेख देख सकते हैं। लेकिन भारत की वर्तमान परिस्थिति क्या ठीक उसी तरह की है? विदेश से उधार लाये गये सिद्धांत को मुल्क की वास्तविक स्थिति पर लादकर उसके समर्थन में मनगढ़ंत तर्क, माल-मसाला और तथ्य संग्रह करने की धुन की वजह से इन लोगों ने देश की अर्थव्यवस्था के क्रमिक विकास के इतिहास को भी समझने की कोशिश नहीं की।

भारतीय पूंजीवाद के विकास का इतिहास

इस देश में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापार-वाणिज्य की शुरुआत के बाद भी सिराजुद्दौला के पतन तक देश के कुटीर उद्योग द्वारा उत्पादित सामानों के व्यापार से भारतीय व्यापारिक (marchantile) पूंजी

का पर्याप्त विकास हुआ था। केवल देश के अंदर ही नहीं, बल्कि पूर्वी एशिया के विभिन्न मुल्कों, दक्षिण अफ्रीका, यूरोप के विभिन्न मुल्कों, यहां तक कि ग्रेट ब्रिटेन के बाजार में भी भारतीय व्यापारी अच्छी तरह व्यापार कर लेते थे। सिराजुद्दौला के साथ इन्हीं व्यापारिक पूंजीपतियों का संबंध बिगड़ा था, जिसके चलते इन व्यापारिक पूंजीपतियों का एक हिस्सा, खासकर जगत सेठ, अमीचन्द आदि व्यापार–वाणिज्य की ज्यादा सुविधाएं पाने की उम्मीद लेकर नवाब के दुश्मनों के साथ और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ षड्यंत्र में शामिल हुए थे। फलतः पलासी के युद्ध में सिराजुद्दौला का पतन हुआ और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पिट्ठू, मीरजाफर की नवाबी कायम हुई। लेकिन व्यापारिक पूंजीपतियों ने जिस उम्मीद में हर तरह की मदद देकर मीरजाफर को गद्दी पर बैठाया था, नतीजा उसका ठीक उल्टा ही हुआ। सिराजुद्दौला की हुकूमत में अंग्रेज व्यापारियों की अपेक्षा भारतीय व्यापारियों को जो थोड़ी–बहुत अतिरिक्त सुविधाएं और प्रधानता प्राप्त थीं, मीरजाफर के समय वह भी बंद हो गयीं। व्यापार–वाणिज्य के क्षेत्र में विषमता आयी। अंग्रेज व्यापारियों का टैक्स माफ कर दिया गया, लेकिन भारतीय व्यापारियों पर टैक्स बढ़ा दिया गया।

मीरकासिम की नवाबी के समय भारतीय व्यापारिक पूंजीपति व्यापार–वाणिज्य के क्षेत्र में पहले अंग्रेज व्यापारियों की तुलना में जो ज्यादा सुविधाएं प्राप्त करते थे, उसे फिर से हासिल करने के लिए और अगर यह संभव न हो तो कम–से–कम अपनी स्थिति को अंग्रेज व्यापारियों के साथ बराबरी पर लाने के लिए कोशिश करते रहे। इसके फलस्वरूप मीरकासिम ने अंग्रेज व्यापारियों की तरह भारतीय व्यापारियों के लिए भी टैक्स माफ कर दिया। यही वजह है कि मीरकासिम के साथ ईस्ट इंडिया कम्पनी की फिर से लड़ाई हुई। इस युद्ध में मीरकासिम की हार होने के साथ–साथ बंगाल में न सिर्फ अंग्रेजों की हुकूमत की नींव ही मजबूत हुई, बल्कि इस देश की व्यापारिक पूंजी भी व्यापार–वाणिज्य के क्षेत्र में पूरी तरह ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन हो गयी। अंग्रेज व्यापारियों के हित में ढाका के तन्तु शिल्प (मलमल के कपड़े बुनने के हथकरघा उद्योग) का विनाश कर देने के लिए ढाका के बुनकरों की उंगलियां काट ली गयीं एवं धीरे–धीरे अन्य भारतीय कुटीर उद्योगों को भी नष्ट कर दिया गया। इस प्रकार भारतीय

व्यापारी, जो अब तक देश के कुटीर उद्योग द्वारा उत्पादित सामग्रियों को लेकर देश के अंदर एक शक्तिशाली व्यापार–वाणिज्य व्यवस्था (trade and commerce system) बना चुके थे एवं विदेशों के बाजारों में भी जिनका बहुत बोलबाला था, वे धीरे–धीरे नष्ट हो गये। नतीजा यह हुआ कि भारतीय व्यापारिक पूंजीपति, जिन्हें स्वाभाविक रूप से औद्योगिक पूंजी एवं राष्ट्रीय पूंजी को जन्म देना चाहिए था, वे पूर्ण रूप से कम्प्राडोर बुर्जुआ (दलाल पूंजीपति) वर्ग में तब्दील हो गये। अर्थात उन्होंने विदेश में उत्पादित सामानों को लेकर ब्रिटिश फर्मों के एजेन्ट के तौर पर इस देश में व्यापार करना शुरू कर दिया।

एक लम्बे अर्से से पूंजी इकट्ठा करते हुए इसी कम्प्राडोर बुर्जुआ वर्ग के एक हिस्से ने सिपाही–विद्रोह से पहले या उसके आस–पास राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग में तब्दील होकर धीरे–धीरे राष्ट्रीय पूंजी को जन्म दिया। सिपाही–विद्रोह के बारे में कार्ल मार्क्स के नोट में भी इस तथ्य का जिक्र मिलता है। जब यह कम्प्राडोर बुर्जुआ वर्ग औद्योगिक पूंजी को जन्म देने की कोशिश कर रहा था, तब उसके आधार पर देश के अंदर धीरे–धीरे राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की जागरूकता पैदा होने लगी। इस प्रकार हमारे देश में कम्प्राडोर बुर्जुआ वर्ग का एक हिस्सा जैसे–जैसे धीरे–धीरे अपने को औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग में बदलता गया, वैसे–वैसे बचे हुए हिस्से के अंदर फिर वह कम्प्राडोर धारा भी साथ–साथ चलती रही। भारत के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के समय लगभग 1930 तक हमारे देश के बुर्जुआ लोग कम्प्राडोर बुर्जुआ और राष्ट्रीय बुर्जुआ–इन दो हिस्सों में बंटे हुए थे। 'कोमिन्टर्न' की छठी विश्व कांग्रेस में स्तालिन की 'औपनिवेशिक थीसिस' से भी इसकी पुष्टि होती है। औपनिवेशिक थीसिस में आजादी आंदोलन के दौरान इन्हीं राष्ट्रीय बुर्जुआओं का 'स्वराजिस्ट' नाम से उल्लेख किया गया। आज के एकाधिकारी घराने टाटा–बिड़ला समूह ही वे राष्ट्रीय बुर्जुआ थे, जो इस नाते से स्वतंत्रता आंदोलन के समय राष्ट्रीय बुर्जुआ नेतृत्व के पृष्ठपोषक थे।

भारतीय पूंजी ने आज निःसंदेह एकाधिकारी चरित्र हासिल कर लिया है

कांग्रेस के इसी राष्ट्रीय बुर्जुआ नेतृत्व के साथ ब्रिटिश साम्राज्यवादियों

का आपसी समझौता होने के फलस्वरूप 1947 में राष्ट्रीय आजादी मिली और राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग भारत की राजसत्ता का मालिक बना। इस तरह आप देख रहे हैं कि भारत में राष्ट्रीय पूंजी का विकास बहुत पहले से ही शुरू हो गया था और आजादी मिलने के बहुत पहले ही वह काफी हद तक मजबूत हो गया था। अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के नेतृत्व ने भी इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया। 1925 में 'यूनिवर्सिटी फॉर द टॉयलर्स ऑफ द ईस्ट' में पूर्वी पराधीन देशों व उपनिवेशों के मुक्ति आंदोलनों के संबंध में भाषण देते हुए स्तालिन ने कहा था कि उस समय ही भारत पूरब के दूसरे सभी उपनिवेशों की तुलना में पूंजीवादी आर्थिक विकास के मामले में सबसे आगे और ताकतवर था। भारत के राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के बारे में स्तालिन ने जो कहा था, उससे समझा जा सकता है कि भारत का राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग उस समय ही एक अखंड वर्ग (homogeneous class) के रूप में आ चुका था। यही राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग पिछले द्वितीय विश्वयुद्ध के समय व्यापार-वाणिज्य के जरिये काफी ताकतवर हुआ और एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग में तब्दील हो गया।

लेकिन नक्सलपंथी नेता-कार्यकर्ता भारत में पूंजीवाद की पैदाइश और उसके विकास के जरिये यह जो एकाधिकारी पूंजी का जन्म हुआ है, इसके अस्तित्व को ही पूरी तरह नकारते हैं। भारत में राष्ट्रीय पूंजी का जन्म, कल-कारखानों का विकास, भारतीय पूंजी का एकाधिकारी पूंजी में रूपांतरण, औद्योगिक पूंजी के साथ बैंक (banking) पूंजी का मिलन हो जाना (merger) और इसकी मार्फत धनकुबेर गुट (financial oligarchy) का जन्म होना, स्टॉक एक्सचेंज से लेकर बैंकों तक के नियंत्रण के जरिये भारतीय एकाधिकारी पूंजीपतियों द्वारा औद्योगिक उत्पादन, यहां तक कि कृषि उत्पादन एवं पूरे आर्थिक जीवन का नियंत्रित होना, भारतीय इजारेदार पूंजी का जन्म होना एवं एशिया-अफ्रीका के साथ-साथ यूरोप के विभिन्न मुल्कों, यहां तक कि अमेरिका और ब्रिटेन तक में भी भारतीय इजारेदार पूंजी के कारोबार का फैलना अर्थात भारतीय पूंजी का खुद ही साम्राज्यवादी चरित्र हासिल करना–इनकी (नक्सलपंथियों की) समझ से यह सब विदेशी पूंजी है और विदेशी इजारेदार पूंजी ही भारतीय पूंजीपतियों के नाम से तथा 'भारतीय स्टाम्प' लगाकर चल रही है। इनके मतानुसार ये सब साम्राज्यवाद के दलाल,

उनके वेतनभोगी नौकर के समान काम करते हैं। अर्थात ये व्याख्या करते हैं कि मानो अमेरिका और ब्रिटेन की पूंजी भारत की स्टाम्प लगाकर भारतीय इजारेदार पूंजी के नाम से एशिया और अफ्रीका में शोषण कर रही है; वस्तुत: यह सब भारतीय पूंजी नहीं है। जबकि आज भारत की इजारेदार पूंजी, भले ही बहुत थोड़ी-सी मात्रा में हो, वर्तमान में अमेरिका एवं ब्रिटेन में भी लगी है, तब इन लोगों की इस व्याख्या को मान लेने का अर्थ यही निकलेगा कि मानो अमेरिका एवं ब्रिटेन की पूंजी भारत में आकर 'भारतीय इजारेदार पूंजी' का लेबल चिपकाकर फिर अमेरिका और ब्रिटेन पहुंच जाती है और वहां पहुंचकर फिर अपने मुल्क के लोगों का ही शोषण करती है। उनकी इस विचित्र व्याख्या को तर्क की खातिर अगर जबरन ही लिया जाये, तब जो सवाल खड़ा रह ही जाता है, उसे मैं आपके सामने पहले ही रख चुका हूं, वह यह है अगर भारत के एकाधिकारी पूंजीपति महज साम्राज्यवाद के दलाल हैं, तो वे प्रतियोगी हिस्सेदार के रूप में विभिन्न मुल्कों के एकाधिकारी पूंजीपतियों की अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्था इंटरनेशनल ट्रस्ट एवं कार्टेल के सदस्य कैसे हो सकते हैं? मार्क्सवाद की 'पॉलिटिकल इकोनॉमी' के किसी नियम या मत के अनुसार, 'कम्प्राडोर बुर्जुआ' अर्थात दलाल पूंजीपति इंटरनेशनल ट्रस्ट एवं कार्टेल के सदस्य हो ही नहीं सकते। इसके बारे में अगर लेनिनवाद के सिद्धांत को माना जाये, जिसे कि माओ त्से-तुंग भी मानते हैं, तो यह बात माननी ही पड़ेगी कि नक्सलपंथियों ने ऊपर से लादे गये एक गलत सिद्धांत के समर्थन में जबरन विचित्र तरह के तर्क देकर भारतीय पूंजीवाद के विकास के पूरे इतिहास को ही मानो 'शंकराचार्य की माया' कहकर उड़ा दिया है।

क्रांति पूर्व चीन की अर्थव्यस्था और वर्तमान भारतीय अर्थव्यवस्था के बीच नहीं है कोई समानता

कॉमरेड माओ त्से-तुंग ने क्रांति पूर्व चीनी अर्थव्यवस्था के चरित्र का विश्लेषण करते हुए दिखाया कि यह एकीकृत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (अर्थात केन्द्रीयकृत पूंजीवादी अर्थव्यवस्था) होने की बजाय एक स्थानीय, आत्मनिर्भर कृषि अर्थव्यवस्था थी। फलत: जहां चीन में उन दिनों कृषि उत्पादित सामान मूलत: स्थानीय ग्रामीण बाजार में बिकने का

माल था, वहीं भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था पूर्ण रूप से केन्द्रीयकृत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अधीन चली गयी है और कृषि उत्पादित सामान पूंजीवादी राष्ट्रीय बाजार के बिकाऊ माल में रूपान्तरित हो गया है और एकाधिकारी पूंजीपति बैंक और स्टॉक एक्सचेंज के नियंत्रण द्वारा इस कृषि उत्पादित सामग्रियों के बाजार को भी पूरी तरह नियंत्रित कर रहे हैं। इस बात को जानने के लिए अर्थशास्त्र संबंधी विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं होगी। रोज रेडियो खोलने पर ही इसकी सच्चाई की जांच हो सकती है। अर्थव्यवस्था के चरित्र के बारे में भी क्रांति से पहले के चीन की स्थिति से मौजूदा भारत की स्थिति का बुनियादी फर्क है।

इस प्रसंग में आपको यह भी जानना चाहिए कि चीनी क्रांति के समय चीन में गांवों के सभी किसानों के साथ धनी किसान को भी क्रांति के मित्र के रूप में ही आंका गया था। अर्थात चीन में धनी किसानों के खिलाफ खेत-मजदूर, बटाईदार किसान तथा गरीब किसानों का द्वन्द्व गांव में वर्ग संघर्ष का मूल द्वन्द्व नहीं था। परन्तु यहां हदबंदी से ज्यादा जमीन बेनामी करके रखने वाले मालिकों के खिलाफ तो द्वन्द्व है ही, हदबंदी के अंतर्गत 60 से 75 बीघे जमीन तक के मालिक—जिन्हें ग्रामीण वर्ग-विन्यास में धनी किसान एवं जोतदार कहा जाता है—उनके खिलाफ भी खेत-मजदूर, बटाईदार किसान तथा गरीब किसान जी-जान से संघर्षरत हैं। नक्सलपंथियों से लेकर वे सभी लोग जो गांव के खेतिहर मजदूरों, बटाईदार किसानों तथा गरीब किसानों के हित के लिए आंदोलन चला रहे हैं, उन्हें वास्तव में आज इन धनी किसानों एवं जोतदारों के खिलाफ ही संघर्ष करना पड़ रहा है। वर्ना गरीब किसानों की हित-रक्षा के नाम पर मगरमच्छी आंसू बहाने से असल में ग्रामीण जोतदार वर्ग की दलाली ही होगी। आज गांव-गांव में जोतदार-विरोधी लड़ाई के नाम से किसानों के जो संघर्ष हो रहे हैं, वे सब तो इन्हीं धनी किसानों के खिलाफ हैं। ये धनी किसान चीन में सामंती मालिकों के खिलाफ क्रांति की मित्र-शक्ति थे, मगर हमारे देश में ये धनी किसान एक वर्ग के रूप में क्रांति के खिलाफ उस राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के मित्र हैं, जिन्होंने भूमि को पूंजीवादी राष्ट्रीय बाजार में कृषि उत्पादित बिकाऊ माल के उत्पादन के साधन में बदल दिया है।

अब क्रांति से पहले के चीन के साथ भारत की मौजूदा राजसत्ता के चरित्र की तुलना करके देखा जाये। माओ त्से-तुंग की व्याख्या के

मुताबिक क्रांति से पहले चीन की राजसत्ता अर्द्ध-औपनिवेशिक, अर्द्ध-सामंती (semi-colonial, semi-feudal) थी अर्थात उसका स्वरूप था प्राक्-पूंजीवादी विकेन्द्रित मध्ययुगीन (pre-capitalist decentralised mediaeval)। इसके अलावा, चीन में एक अखंड सुसंगठित केन्द्रीय शासन-व्यवस्था नहीं थी। सारा चीन भिन्न-भिन्न साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रभाव क्षेत्रों के रूप में अलग-अलग क्षेत्रों में बंटा हुआ था और वे सभी हिस्से अलग-अलग रूप में साम्राज्यवादियों के दलाल विभिन्न युद्ध-नायकों (warlords) के द्वारा शासित होते थे। उनके बीच सम्पर्क बनाये रखने वाली नाममात्र की एक केन्द्रीय सरकार नानकिंग में थी। फिर प्रत्येक युद्ध-नायक की अपनी अलग-अलग सेनाएं थीं और वे अक्सर आपस में युद्ध करते रहते थे। यहां तक कि नानकिंग में जो नाममात्र की केन्द्रीय सरकार थी, कभी-कभी उसके खिलाफ भी ये लोग बगावत का एलान कर देते थे और ज्यादातर लड़ाइयों में ही उलझे रहते थे। ऐसी हालत में स्वाभाविक रूप से ही वहां किसी सार्वभौम पार्लियामेंट तथा केन्द्रीकृत राष्ट्रीय सेना का होना संभव नहीं था, और उस देश में यह थी भी नहीं। क्या भारत की वर्तमान राजसत्ता के साथ उस वक्त के चीन का किसी तरह का मेल नजर आता है? बल्कि उसके विपरीत भारत में किसी भी उन्नत पूंजीवादी मुल्क की तरह ही एक बहुत ही सुसंगठित, केन्द्रीकृत तथा आधुनिक किस्म की राजसत्ता मौजूद है और अत्यंत आधुनिक सुसंगठित केन्द्रीकृत पूंजीवादी देश की तरह ही यहां एक अत्यन्त सुसंगठित केन्द्रीकृत राष्ट्रीय सेना भी है और एक सार्वभौम पार्लियामेंट मौजूद है, जिसके साथ क्रांति से पहले के चीन की स्थिति का कोई भी मेल नहीं है। तो आप देख रहे हैं कि न तो राजसत्ता के वर्ग चरित्र में, न राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग की बनावट या प्रकृति में, न ग्रामीण अर्थव्यवस्था के चरित्र में, न ग्रामीण मूल वर्ग-संघर्ष और वर्ग-विन्यास के क्षेत्र में–किसी भी दृष्टि से हमारे देश की क्रांति का सिद्धांत चीन की क्रांति के सिद्धांत के साथ एक नहीं हो सकता।

गुरिल्ला युद्ध के रणकौशल का जनता की जनवादी क्रांति से कोई संबंध नहीं

नक्सलपंथी एक और मामले में घाल-मेल कर रहे हैं–ऐसी मेरी धारणा है। गुरिल्ला युद्ध की नीति अपनाकर गांवों में आजाद इलाके

बनाते हुए शहर को घेर लेने के रणकौशल को और जनता की जनवादी क्रांति के सिद्धांत को इन्होंने एक जैसा ही समझ लिया है। वे यह समझ नहीं पाये कि चीन में गुरिल्ला युद्ध-नीति के लिए 'नयी जनवादी क्रांति' का सिद्धांत और गांवों में आजाद इलाके बना-बना कर शहर पर कब्जा करने का रणकौशल नहीं अपनाया गया था। मुख्यत: जिन दो कारणों से चीन के देहात में आजाद इलाके बना-बना कर शहर दखल करने का दाव-पेंच अपनाया गया था वे कारण हैं: 1) राजनैतिक रूप से–पहला यह कि चीन की राजसत्ता मध्ययुगीन विकेन्द्रीकृत चरित्र की थी। फिर जहां देश के अंदर उन्नत संचार और यातायात व्यवस्था का अभाव था, वहीं विभिन्न साम्राज्यवादी देशों के दलाल युद्ध-नायकों (war lords) के अधीन अलग-अलग ढंग से शासित विभिन्न इलाके थे और देश में विभिन्न युद्ध-नायकों के बीच आपसी दुश्मनी और लड़ाइयां थीं। 2) आर्थिक रूप से–यह कि चीन की अर्थव्यवस्था एक एकीकृत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (unified national economy) की बजाय आत्मनिर्भर स्थानीय ग्रामीण कृषि अर्थव्यवस्था थी। राजनैतिक और आर्थिक मूलत: इन्हीं दो कारणों के चलते चीनी क्रांति में गांवों में आजाद इलाके बनाकर शहरों को घेर लेने के दांव-पेंच को व्यवहारिक रूप देना संभव हुआ था। गुरिल्ला युद्ध की नीति और कौशल अपनाने के साथ गांवों में आजाद इलाके बनाकर शहर दखल करने का रणकौशल और जनता की जनवादी क्रांति का सिद्धांत अपनाने का कोई सीधा संबंध नहीं है। आपको यह याद रखना चाहिए कि चाहे स्वतंत्रता आंदोलन हो या जनता की जनवादी क्रांति हो अथवा समाजवादी क्रांति हो–जिस मुल्क में भी शासक वर्ग के खिलाफ यह लड़ाई लम्बे अर्से तक चलने वाली लम्बी लड़ाई का रूप लेगी, वहीं क्रांतिकारियों को गुरिल्ला युद्ध की नीति और रणकौशल अपनाना जरूरी हो जायेगा। इसके अलावा हरेक मुल्क की अपनी-अपनी अलग-अलग विशेषताओं के कारण जहां कहीं भी शासक वर्ग के खिलाफ क्रांतिकारी वर्ग गुरिल्ला युद्ध करेगा, वहीं उसे गुरिल्ला युद्ध के सिद्धांत और रणकौशल में कुछ-न-कुछ जोड़ने की जरूरत पड़ेगी ही। वरना केवल नकल करके ही वे गुरिल्ला युद्ध को नहीं चला पायेंगे। अत: आप समझ गये होंगे कि गुरिल्ला युद्ध के दांव-पेंच अपनाने के साथ गांवों में मुक्त

इलाके बनाकर शहरों पर कब्जा करने का रणकौशल तथा जनता की जनवादी क्रांति का सिद्धांत जिन्हें नक्सलपंथियों ने एक कर दिया है, असलियत में एक नहीं है।

इस सिलसिले में एक अन्य महत्वपूर्ण बात भी याद रखनी चाहिए, जिस पर नक्सलपंथी नेता और कार्यकर्ता बिलकुल ध्यान नहीं दे रहे हैं। चीन की परिस्थिति में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने देहाती इलाकों में किसानों का विद्रोह, सीधा हथियारबंद संघर्ष एवं गुरिल्ला युद्ध संगठित करने से पहले किसानों के बीच व्यापक रूप से सहकारी समितियों (को-आपरेटिव्स) और किसान संगठनों को तैयार कर लिया था। इस प्रकार जनता के व्यापक समर्थन को संगठित किये बिना गुरिल्ला युद्ध वहां भी स्थाई नहीं हो सकता था। इस संबंध में भी देखा जाता है कि माओ त्से-तुंग की चिंतनधारा के साथ नक्सलपंथियों की कार्य-प्रणाली का कोई मेल नहीं है।

चे-गुयेवरा के सिद्धांत को पीछे छोड़ चुके नक्सलवादी व्यवहारतः क्रांति के नाम पर डेब्रे के सिद्धांत की जुगाली कर रहे

असल में क्रांति के नाम से नक्सलपंथी लोग आजकल जो कर रहे हैं, उससे देखा जाता है कि ये लोग चे-गुयेवरा के विचार से भी एक कदम आगे बढ़कर डेब्रे के विचार के अनुरूप एक सिद्धांत का अनुसरण करके चल रहे हैं और उसे ही माओ त्से-तुंग विचारधारा के नाम से चलाये जा रहे हैं। इस सिद्धांत की मूल बात यह है कि सत्ता हासिल करने के लिए सही लड़ाई शुरू करने से पहले देश के अंदर कष्टसाध्य (painstaking) राजनैतिक और वैचारिक संघर्ष चलाते हुए धीरे-धीरे क्रांतिकारी पार्टी को ताकतवर बनाने तथा जनता के विभिन्न जन संगठनों को संगठित करने की कोई जरूरत नहीं हैं; सिर्फ क्रांतिकारियों को कई ग्रुपों में बंटकर छिटपुट ढंग से व्यक्तिगत आतंकवाद (stray individual terrorism) पैदा कर पाने से ही जनसाधारण क्रांति की ओर आकृष्ट होने लगेंगे और क्रांतिकारी संगठन अपने आप जनसाधारण के बीच बनता जायेगा; अगर क्रांतिकारी लोग बिलकुल छोटे-छोटे ग्रुपों में बंटकर लगातार छिटपुट आतंकवाद पैदा करके शासन-तंत्र को संकट में डालते रहे तो वर्तमान सामाजिक व्यवस्था और

शासन-व्यवस्था के शोषण से ऊकताये हुए लोग, यहां तक कि समाज-विरोधी तत्व भी, उससे उत्साहित होकर व्यक्तिगत आतंकवाद के द्वारा राज्य को परेशान करते रहेंगे; ऐसे मौके से फायदा उठाकर क्रांतिकारियों के नाम पर 'एजेन्ट प्रोवोकेचर' लोग भी यही सब काम करेंगे; यहां तक कि पुलिस वाले जासूस भी आपसी रंजिश की वजह से कभी-कभी एक-दूसरे से बदला साधने के लिए ये सब काम करेंगे; फलस्वरूप क्रांति के नाम पर चोरी-डकैती, व्यक्तिगत खून-खराबा होगा और इससे राज्य के अंदर एक असुरक्षा की फिजा पैदा होगी और इसी तरह अपने आप ही क्रांति हो जायेगी। यह माओ त्से-तुंग का सिद्धांत नहीं है; माओ त्से-तुंग विचारधारा के साथ इसका कुछ भी संबंध नहीं है। बल्कि यह सिद्धांत मार्क्सवाद-लेनिनवाद और माओ चिंतन का घोर विरोधी है, फिर भी लगभग डेब्रे के सिद्धांत के अनुरूप इस सिद्धांत को ही ये लोग माओ त्से-तुंग विचारधारा कहकर चला रहे हैं। एक ओर चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को भारत की परिस्थिति के बारे में और यहां के आंदोलन के संबंध में गलत रिपोर्ट तथा जानकारी देकर और दूसरी ओर अपने क्रियाकलापों द्वारा, जिससे माओ त्से-तुंग की शिक्षा का कोई संबंध नहीं है, उसे ही माओ की नीति कहकर चलाने के फलस्वरूप ये भारत के राजनैतिक तौर पर अचेत व अनजान अवाम की नजर में माओ त्से-तुंग जैसे एक महान नेता एवं चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की गरिमा को ही घटाते जा रहे हैं।

न तो अविभाजित सीपीआई और न ही सीपीआई (एम) व सीपीआई (एमएल) भारत की क्रांति का सही स्तर निर्धारित कर सकी

इस तमाम चर्चाओं से आपने देखा कि विदेश के सिद्धांत पर अंधे की तरह चलने की पुरानी आदत के कारण आजादी आंदोलन की पूरी अवधि में, खासकर 1942 में इनके आचरण और व्यवहार के अलावा 1948 में रणदिवे ने किस तरह कोमिनफोर्म के दस्तावेज में दिये गये सोवियत रूस के सिद्धांतकार झदानोव के जनता की जनवादी क्रांति (People's Democratic Revolution) के सिद्धांत की हू-ब-हू नकल करके, यहां की वास्तविक परिस्थिति को अस्वीकार करते हुए उसे

भारत की क्रांति के स्तर पर जबरन थोपने की कोशिश की। उसके बाद जब सिद्धांत और व्यवहार में स्व-विरोध दिखाई देने लगा, तो इन्होंने कई बार विभिन्न पार्टी कांग्रेसों में पहले की भूलें सुधारने की कोशिशें की। मगर हर बार रणकौशल संबंधी थोड़ा हेर-फेर करके क्रांति के सिद्धांत को बुनियादी तौर पर हमेशा वैसा ही रहने दिया। यहां तक कि सैद्धांतिक विरोध की बात कहकर पार्टी दो-दो बार बंटी थी, पर उससे भी विश्लेषण करके देखा गया कि सैद्धांतिक क्षेत्र में वाकई किसी प्रकार का मौलिक परिवर्तन करने में ये लोग असमर्थ रहे। इसके अलावा यह भी देखा गया कि सीपीआई शुरू से ही चिंतन-प्रक्रिया के मामले में गैर-मार्क्सवादी पद्धति लेकर गठित हुई थी, जिसके फलस्वरूप यह एक सही कम्युनिस्ट पार्टी नहीं बन सकी। सीपीआई (एम) ने भी पुरानी पार्टी से निकलकर नयी पार्टी गठन से पहले, पुरानी पार्टी की गैर-मार्क्सवादी चिंतन-प्रक्रिया से संबंध विच्छेद नहीं किया तथा मजदूर वर्ग की सही मार्क्सवादी क्रांतिकारी पार्टी गठित करने के लिए पूर्वशर्त के तौर पर जो प्राथमिक संघर्ष करना होता है, वह नहीं किया। अर्थात (1) जीवन के छोटे-बड़े तमाम पहलुओं को लेकर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर एक संयोजित समाजवादी आंदोलन (co-ordinated socialist movement) चलाकर वैचारिक केन्द्रीयता (ideological centralism) हासिल करना; (2) दल के नेताओं, कार्यकर्ताओं, समर्थकों और आम लोगों में सामूहिक नेतृत्व की एक ठोस धारणा (a concrete conception of collective leadership) पैदा करना; और (3) उपरोक्त संघर्षों के जरिये ऐसे पेशेवर क्रांतिकारियों का एक दस्ता (a band of professional revolutionaries) तैयार करना जो पूरा वक्त देनेवाले वेतनभोगी कार्यकर्ताओं (paid wholetime workers) से एकदम भिन्न चरित्र के हों—मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी गठित करने हेतु जरूरी पूर्वशर्तों के रूप में इन तीन कामों को पूरा करने से पहले ही इन्होंने जल्दबाजी में नयी पार्टी बना डाली, जैसा कि मैं पहले ही बता चुका हूं। नक्सलपंथी भी शीघ्र ही एक पार्टी बनाने जा रहे हैं—ऐसा मेरा विश्वास है। लेकिन ये भी सीपीआई (एम) की चिंतन पद्धति से अपना संबंध-विच्छेद करने और मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी के गठन के लिए जरूरी उपरोक्त प्राथमिक कार्यों को पूरा करने के लिए कोई

कारगर संघर्ष नहीं कर रहे हैं। फलतः निकट भविष्य में ये लोग पार्टी तो जरूर बना लेंगे, पर इनकी यह पार्टी भी आगे चलकर सीपीआई-सीपीआई (एम) की तरह ही एक और संशोधनवादी पार्टी में ढल जायेगी। यह नयी पार्टी भी पुरानी पार्टी की परम्परा अर्थात उसी चिंतन-पद्धति और गुटबाजी की राजनीति लेकर ही गठित होगी और इसी वजह से चूंकि इनका सिद्धांत भी, कुछ शब्दावलीं तथा रणकौशल संबंधी फर्क को छोड़कर जनता की जनवादी क्रांति का ही सिद्धांत है, इन नक्सलपंथियों में भी फिर दो परस्पर विरोधी रुझान दिखाई देंगे। एक गुट धीरे-धीरे पार्लियामेंटरी राजनीति की शरण में जाना चाहेगा और दूसरा गुट क्रांति की आकुलता के कारण हठधर्मी के झुकाव (adventurism) का शिकार बनेगा। फिर आगे चलकर यह पार्टी भी दो भागों में बंट जायेगी। इस चर्चा से आप समझ गये होंगे कि हमारे देश में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी नामवाली पहले की अविभाजित और वर्तमान की तीन भागों में विभाजित इस पार्टी ने चाहे भारत की वास्तविक परिस्थिति का सही विश्लेषण करके क्रांति के स्तर-निर्णय के प्रश्न में हो, या अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व के साथ संबंध के क्षेत्र में हो, या फिर मजदूर वर्ग की सही क्रांतिकारी पार्टी बनाने के लिए सही संगठन-पद्धति अपनाने के मामले में हो, कभी भी मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्रांतिकारी दृष्टिकोण के मुताबिक व्यवहार नहीं किया। इसका कोई भी हिस्सा भारत की शोषित जनता के पूंजीवाद-विरोधी मुक्ति-संघर्ष अर्थात पूंजीवादी राजसत्ता को उखाड़ फेंकने की क्रांति में नेतृत्व करने के लायक नहीं है।

निजी जीवन, आदत-व्यवहार में मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण अपनाकर नेताओं के लिए अपना सांस्कृतिक स्तर निरंतर ऊंचा उठाने का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण

अब पार्टी को जांचने के सिलसिले में राजनैतिक बातों के अलावा एक और अत्यंत महत्वपूर्ण बात की चर्चा में आपसे करना चाहता हूं। वह यह कि एक नया शोषण-मुक्त समाज बनाने के लिए हम जो क्रांति करना चाहते हैं, उसके पूरक सांस्कृतिक क्रांति का कोई कार्यक्रम इन पार्टियों का है या नहीं। अर्थात समाज के अंदर जो पुरानी मनोवृत्ति आज भी है, उसे खत्म करते हुए हमारे देश की

क्रांति की पूरक नयी मानसिकता अर्थात एक नया उन्नततर सांस्कृतिक और नैतिक स्तर, जो सर्वहारा क्रांति के विकास में सहायक हो, वह हासिल करने के लिए जीवन के छोटे-बड़े तमाम पहलुओं और क्रियाकलापों से संबंधित सामग्रिक व संयोजित ज्ञान (co-ordinated knowledge) के आधार पर एक मार्गदर्शक नीति (guide to action) इन पार्टियों ने मुल्क के आम लोगों और आंदोलनों के सामने रखी है या नहीं। और, खासकर इन पार्टियों के नेताओं और कार्यकर्ताओं ने, जो इस वैचारिक-सांस्कृतिक आंदोलन के पुरोधा हैं, उस तरह सामग्रिक और संयोजित ज्ञान के आधार पर बनी उन नीतियों को सबसे पहले अपने-अपने जीवन में अमल में लाने के लिए संघर्ष शुरू किया है या नहीं। अर्थात संक्षेप में, राजनैतिक क्रांति की पूरक वैचारिक और सांस्कृतिक क्रांति संगठित करने की वास्तव में कोई कोशिश ये कर रहे हैं या नहीं। कारण, कुछ नेता ऐसे हैं जो कार्यकर्ताओं की चेतना का स्तर खूब ऊंचे स्तर तक पहुंचने और सूक्ष्म विश्लेषण की आवश्यक योग्यता हासिल करने में चूंकि समय लगता है, इसलिए उनकी चेतना के निम्न स्तर का फायदा उठाते हुए लेनिन, स्तालिन एवं माओ त्से-तुंग आदि नेताओं की दुहाई देकर क्रांति के मोटे-मोटे सिद्धांतों एवं गरमा-गरम बातों से तथा समय-समय पर तथाकथित जुझारू किस्म की लड़ाई चलाकर कार्यकर्ताओं और जनसाधारण को समझाना चाहते हैं कि मानो पार्टी की रणनीति और क्रांति के स्तर-निर्णय संबंधी विश्लेषण ठीक होने से ही पार्टी ठीक हो जाती है। जीवन के दूसरे विभिन्न क्षेत्रों में तथा विभिन्न विषयों के संबंध में नेताओं का आचरण चाहे जैसा भी हो—कला, साहित्य, रुचि, नीति-नैतिकता, पारिवारिक संबंधों एवं सामाजिक सम्पर्कों के बारे में उनका दृष्टिकोण चाहे जैसा भी हो और दैनिक आचरण के मामलों में उनका सांस्कृतिक-नैतिक स्तर चाहे जितना भी गिरा हुआ क्यों न हो, मानो उससे कुछ आता जाता नहीं! इनके वक्तव्यों के विश्लेषण से यह निकलता है कि सिर्फ क्रांतिकारी सिद्धांत एवं सर्वहारा क्रांति अर्थात राजनीति के संबंध में मार्क्सवाद-सम्मत धारणा होने से ही काम चल जायेगा; व्यक्तिगत जीवन में तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं आचरण के मामले में अगर नेता-कार्यकर्ता बुर्जुआ संस्कृति के

ही गुलाम रह जायें तो इसको लेकर सर खपाने की जरूरत नहीं। कितने ताज्जुब की बात है! सांस्कृतिक क्षेत्र में, व्यक्तिगत जीवन में, रुचि व आचरण के क्षेत्र में, नैतिकता व आदत के क्षेत्र में, कार्यकर्ताओं और नेताओं के जीवन में अगर बुर्जुआ संस्कृति का प्रभाव रह जाये तो क्या सिर्फ क्रांतिकारी लफ्फाजी से ही सर्वहारा क्रांति हो जायेगी? क्या यह कभी संभव हो सकता है? फिर भी कुछ नेता ऐसे हैं, जो समझते हैं कि केवल सिद्धांत सही होने से, क्रांति का स्तर-निर्णय सही होने से और पार्टी सही होने से ही क्रांति हो जायेगी। इस बात को कहते हुए, सभी क्रांतियों के लिए आवश्यक, नेताओं व कार्यकर्ताओं के बीच सर्वव्यापक उस सांस्कृतिक क्रांति, जिसे खास क्रांति की पूरक के रूप में सबसे पहले करना जरूरी होता है, के महान उत्तरदायित्व से नेता अपने को बचाते हैं और व्यक्तिगत जीवन में आदतों, आचरणों एवं सांस्कृतिक पहलुओं में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के मुताबिक परिवर्तन लाने की कोशिश भी नहीं करते हैं। जबकि लेनिन ने हमें सिखाया है कि सांस्कृतिक क्रांति सत्तात्मक क्रांति की अग्रगामी होती है। (cultural revolution precedes technical revolution)। इसलिए कोई भी सही मार्क्सवादी जानता है कि राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम के संयोजन (integration) के बिना किसी भी देश में क्रांति सही मायने में सफल नहीं हो सकती।

इन नेताओं के ऐसे आचरण से यही साबित होता है कि देश में राजनैतिक क्रांति की पूरक सांस्कृतिक क्रांति के कार्यक्रम पर चलने की ये कोई जरूरत ही नहीं समझते। इनके मतानुसार यह तो राजनैतिक और आर्थिक संघर्षों के बीच से अपने आप (automatically) ही हो जायेगी। इसी का यह नतीजा है कि देश के जनवादी आंदोलनों में भाग लेने वाली जनता और छात्र-नौजवानों पर इन तथाकथित मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियों का प्रभाव जितना ही बढ़ता जा रहा है, उतना ही जनता का सांस्कृतिक और नैतिक स्तर उन्नत होना तो दूर रहा, उल्टे और भी तेज गति से नीचे गिरता जा रहा है। क्या एक बार भी इन सब पार्टियों के नेताओं, कार्यकर्ताओं और समर्थकों ने यह सोच कर देखा है कि ऐसा क्यों होता है, ऐसा होने

की वजह क्या है? अत: मेरी समझ से इस पर थोड़ी-सी चर्चा की दरकार है।

हमारे देश में साम्राज्यवाद-विरोधी राष्ट्रीय आजादी आंदोलन के जमाने में उस राष्ट्रवादी विचारधारा और आंदोलन में हजारों किस्म की गलती-खामियों के बावजूद चूंकि वह राष्ट्रवादी विचारधारा उस वक्त की परिस्थिति के संदर्भ में कुल मिलाकर प्रगतिशील और क्रांतिकारी थी, इसलिए उससे प्रभावित होकर आजादी आंदोलन में शामिल होने वाले छात्र, नौजवान और बुद्धिजीवी तबके के लोग साम्राज्यवाद द्वारा पैदा की गयी गुलामी की मनोवृत्ति तथा पुराने सामंती समाज की संकीर्णता एवं हर तरह के कुसंस्कारों की बेड़ियों को तोड़कर राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रेरित होकर एक सम्पूर्णत: नये आदर्श एवं उन्नत नैतिक-सांस्कृतिक स्तर के आधार पर जाग उठे थे। उन दिनों आजादी आंदोलन के आह्वान पर देश के छात्र-नौजवानों ने स्कूल-कॉलेज ही नहीं छोड़े, बल्कि बहुत सारे जुझारू संघर्ष भी चलाये। साम्राज्यवाद-विरोधी उन सभी संघर्षों में हमने उनमें एक सापेक्षत: उन्नत नैतिक-सांस्कृतिक स्तर की झलक देखी। इसलिए उन दिनों आजादी आंदोलन में शामिल मुल्क के उन छात्र-नौजवानों को कोई भी अनुशासनहीन, उद्दंड नहीं कहता था, बल्कि 'खिलते हुए फूल' मानता था।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद इस युग का सर्वाधिक वैज्ञानिक एवं सर्वश्रेष्ठ सिद्धांत

हम जानते हैं कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद ही एकमात्र क्रांतिकारी सिद्धांत है, जो आज के युग में सबसे ज्यादा वैज्ञानिक और सर्वश्रेष्ठ मतवाद या विचारधारा है और जो वर्तमान संकटग्रस्त पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था की जंजीरों से मनुष्य को आजाद करके एक नयी शोषणमुक्त, वर्ग-विहीन, उन्नततर सामाजि व्यवस्था कायम करने में सक्षम है। हम यह भी जानते हैं कि क्रांतिकारी चिंतन और विचारधारा एवं क्रांतिकारी सिद्धांत हमेशा ही उन्नततर सांस्कृतिक-नैतिक स्तर को जन्म देता है। इस उन्नततर सांस्कृतिक-नैतिक स्तर को थोड़ी भी मात्रा में हासिल किये बिना किसी भी मुल्क की जनता क्रांति नहीं कर सकती। ये सब पार्टियां जो अपने को मार्क्सवादी-लेनिनवादी कहती हैं, अगर वास्तव में

मार्क्सवादी-लेनिनवादी होतीं, तो इनका प्रभाव बढ़ने के साथ-साथ कम-से-कम जनवादी आंदोलनों में भाग लेने वाली जनता एवं छात्र-युवाओं के बीच फैली बुर्जुआ समाज की सड़ी-गली संस्कृति के प्रभाव से मुक्त होने के लक्षण भी दिखाई देते एवं उनमें हम एक नया उन्नततर नैतिक एवं सांस्कृतिक स्तर देख पाते। परन्तु वास्तव में हमें इसके उलट ही नजारा देखने को मिल रहा है। क्या इससे यह साबित नहीं होता कि ये लोग इस मुल्क में मार्क्सवाद-लेनिनवाद के नाम पर जो कुछ कर रहे हैं, वह दरअसल मार्क्सवाद-लेनिनवाद नहीं है? किसी भी युग में किसी भी क्रांतिकारी विचारधारा और सिद्धांत का असल मर्म और प्राण उसकी सांस्कृतिक और नैतिक धारणा में ही निहित रहता है। बुर्जुआ क्रांति अर्थात पूंजीवादी क्रांति के युग की सर्वोच्च स्तर की मानवतावादी संस्कृति, मूल्यबोध और नैतिकता की धारणा से भी कहीं ऊंची संस्कृति, मूल्यबोध और नैतिक स्तर हासिल करने में ही मार्क्सवाद-लेनिनवाद का मूल मर्म और प्राण निहित है—इस बात को ठीक से नहीं पकड़ पाने के फलस्वरूप ही उपरोक्त विपत्ति पैदा हुई है। इनके हाथों में पड़कर मार्क्सवाद-लेनिनवाद बेजान देह-सा हो गया है। मुर्दे के समान ही इन सब तथाकथित मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियों के भी समाज में रहने और प्रभाव बढ़ने से समाज तथा क्रांतिकारी आंदोलन, दोनों को ही नुकसान पहुंच रहा है। जब तक देश का जन आंदोलन एवं विशेष रूप से वामपंथी आंदोलन इन तथाकथित मार्क्सवादी-लेनिनवादियों के नेतृत्व में रहेगा, तब तक रोजमर्रे की आर्थिक और राजनैतिक मांगों के आधार पर चाहे कितनी भी जुझारू लड़ाइयां क्यों न लड़ी जायें, आम तौर पर जनता और खासकर जनवादी आंदोलन में भाग लेने वाले छात्र-नौजवानों के सांस्कृतिक स्तर के लगातार पतन को किसी तरह नहीं रोका जा सकेगा। मुल्क का अवाम अगर इसी तरह निम्न स्तर की संस्कृति अर्थात सांस्कृतिक मामलों में बुर्जुआ एवं सामंती संस्कृति का ही दास बना रह जाये, तो जनवादी आंदोलन की नाकामयाबी और देशव्यापी निराशा की स्थिति में वे प्रतिक्रिया के शिकार बन सकते हैं और आखिरकार यह भी हो सकता है कि प्रतिक्रिया के हाथों में पड़कर वे क्रांति-विरोधी शक्ति में ही बदल जायें—जैसा कि हम इन्डोनेशिया के इतिहास में देख चुके हैं।

इसके अलावा, मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्तालिन, माओ–इन सभी के वक्तव्यों से ज्ञात होता है कि उन्नततर सांस्कृतिक स्तर अर्थात सर्वहारा सांस्कृतिक स्तर हासिल किये बिना सही रूप से मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत को विचारने की दक्षता भी हासिल नहीं हो सकती। इसलिए जो लोग यह सोचते हैं कि 'क्रांति' का सिद्धांत सही होने से ही पार्टी सही हो गयी', वे भूल जाते हैं कि सांस्कृतिक स्तर निम्न कोटि का होने के कारण क्रांतिकारी सिद्धांत का उनका मूल्यांकन भी सही नहीं हो सकता। बुनियादी राजनैतिक क्रांतिकारी सिद्धांत अर्थात भारत की क्रांति का स्तर–निर्धारण एवं रोज–रोज के क्रांतिकारी जन–आंदोलनों के दाव–पेंच तय करने के मामले में ये सब तथाकथित मार्क्सवादी–लेनिनवादी पार्टियां जो बार–बार गलती करती आ रही हैं, उसका एक मुख्य कारण भी यही है।

सर्वहारा सांस्कृतिक स्तर हासिल किये बिना क्रांति के सिद्धांत का समुचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता

पार्टी के बारे में विचार करने के सिलसिले में हमारे देश में बहुत से लोग इस पहलू पर ध्यान ही नहीं देते हैं और जो देते हैं, वे भी इसे इतना महत्वपूर्ण विषय नहीं मानते हैं। परन्तु पार्टी और क्रांतिकारी सिद्धांत के बारे में विचारने के सिलसिले में यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है, क्योंकि जो कम्युनिस्ट पार्टी क्रांति करेगी, अगर वह स्वयं निम्न कोटि की संस्कृति का शिकार (victim) होती है, तो उसके द्वारा, चाहे और जो भी हो, क्रांति नहीं हो सकती। मार्क्स ने कहा है–दुनिया को बदलने के लिए मजदूरों को पहले अपने आपको बदलना होगा (To change the world, workers will have to change themselves first)। इसका मतलब यह हुआ कि मजदूर चाहने मात्र या कुछ क्रांतिकारी बातें बोलना सीख लेने से ही परिवर्तन नहीं ला सकते। जो मजदूर दुनिया को बदलेंगे, पहले उन्हें अपने जीवन में ही परिवर्तन लाना होगा। मार्क्स ने ऐसा क्यों कहा था? मार्क्स ऐसा भी तो कह सकते थे कि मजदूर लोग अपनी बौद्धिक क्षमता या दैनिक संघर्ष के जरिये जानकारी हासिल करने के साथ–साथ अगर सिर्फ कुछ क्रांतिकारी नारे और सिद्धांत की बातें करना सीख जायें तो क्रांति सफल कर सकते हैं? नहीं, यह कभी

भी संभव नहीं। **क्योंकि उन्नततर सांस्कृतिक स्तर अर्थात सर्वहारा संस्कृति का स्तर हासिल किये बिना विभिन्न क्रांतिकारी सिद्धांतों को विचारने की योग्यता ही सही रूप से हासिल नहीं की जा सकती और सही क्रांतिकारी सिद्धांत की जानकारी भी नहीं हो सकती। इसलिए क्रांतिकारी राजनीति पर कारगर रूप से अमल करने का अर्थ ही है लाखों-लाख लोगों को इस क्रांति में सम्मिलित करते हुए वास्तव में जीवन को ही पलट डालना। इसलिए प्रत्येक क्रांति से पहले उसके लिए जरूरी सांस्कृतिक क्रांति कर लेने की आवश्यकता है।** लेकिन जो लोग सांस्कृतिक क्षेत्र में इस क्रांति को करेंगे, पार्टी के वे नेता और कार्यकर्ता अगर खुद ही व्यक्तिगत आदत, रुचि, दृष्टिकोण और आचरण में बुर्जुआ संस्कृति के शिकार हों, तो वे कभी इसे कर नहीं सकेंगे। हमारे देश की कम्युनिस्ट नामधारी पार्टियों ने केवल बाहरी आंदोलनों में ही नहीं, बल्कि पार्टी के भीतरी संघर्ष के मामले में भी, कार्यकर्ताओं और खासकर नेताओं के जीवन व दृष्टिकोण को बदलने एवं उन्नत सांस्कृतिक स्तर हासिल करने के इस पहलू की ओर थोड़ा-सा भी ध्यान नहीं दिया। इस तरह इन लोगों ने देश की जनता को ही नहीं, बल्कि सीधे-सरल और ईमानदार (honest and innocent) आम कार्यकर्ताओं को भी ठगा है, जिनके त्याग की बदौलत ही ये सब बड़े-बड़े वजीर, नाजिर बने बैठे हैं। मुझे दु:ख के साथ यह कहना पड़ रहा है।

मैं पहले ही कह चुका हूं कि मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी मजदूर वर्ग की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक–एक मायने में उसकी सभी वर्गीय आकांक्षाओं को पूरा करने का हथियार है। लेनिन ने कहा है–यह पार्टी है मजदूर वर्ग के सबसे सचेत और क्रांतिकारी तबके का संगठन, मजदूर वर्ग का अगुआ दस्ता। इसलिए मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी के नेता सर्वहारा संस्कृति की जान (cream) हैं, कम-से-कम उनके अपने आचरण में, जीवन में–वह चाहे व्यक्तिगत जीवन में हो या किसी सामाजिक आंदोलन को चलाने के मामले में हो, वे सर्वहारा वर्ग के दृष्टिकोण और संस्कृति को ही प्रकट करेंगे। **इस सर्वहारा वर्ग की संस्कृति की मूल बात क्या है? इसकी मूल बात यह है कि इस संस्कृति को जिन्होंने अपनाया है, वे हर प्रकार की निजी सम्पत्ति**

की भावना से मुक्त हैं। निजी सम्पत्ति की भावना से मुक्त कहने का मतलब यह है कि उनकी सांस्कृतिक और रुचिगत धारणाएं और रोजमर्रे के आचरण भी निजी सम्पत्ति-बोध (property sense) अर्थात व्यक्तिगत सम्पत्ति की मनोभावना (private property mental complex) से मुक्त अर्थात बुर्जुआ व्यक्तिवाद एवं बुर्जुआ व्यक्तिवादी चिंतन-पद्धति के प्रभाव से मुक्त होंगे। कम्युनिस्ट संस्कृति को स्पष्ट करते हुए मार्क्स ने कहा है कि 'यह व्यक्तिगत सम्पत्ति की मनोभावना से मुक्त मानवतावाद है'- (It is humanism minus private property)। इसलिए क्रांतिकारी सर्वहारा या कम्युनिस्ट बनने के लिए किसी व्यक्ति का बुनियादी संघर्ष होगा–सबसे पहले शोषित जनता के क्रांतिकारी आंदोलनों में प्रत्यक्ष रूप से शामिल होकर सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी राजनीति को अपनाते हुए यह सांस्कृतिक व रुचिगत मान हासिल करने के लिए मजदूर वर्ग, क्रांति और क्रांतिकारी पार्टी के हित में क्रांतिकारी पार्टी के सामने अपनी व्यक्ति-सत्ता और अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को बिना किसी संकोच और हिचकिचाहट के, सानन्द तिलांजलि दे सकने का संघर्ष। हमेशा इस 'व्यक्तिगत स्वार्थ' को तिलांजलि देने के साथ बुर्जुआ अर्थ में 'देश के लिए धन-सम्पत्ति, घर-बार या जीवन का सब-कुछ त्याग करने' का बुनियादी फर्क है, क्योंकि बुर्जुआ चिंतन से प्रभावित होकर जो 'त्याग' किया जाता है, उसके द्वारा अहम् भावना, व्यक्ति-केन्द्रित मन तथा अहंकार भाव (ego) लगातार बढ़ता ही रहता है और अंततः यह कम्युनिस्ट बनने के रास्ते में भयंकर बाधा पैदा करता है। याद रखना होगा कि इस संघर्ष को जिसने सही ढंग से शुरू किया है, उसने ही कम्युनिस्ट चेतना हासिल करने का संघर्ष मात्र प्रारंभ किया है। सिर्फ इस संघर्ष में सफलता प्राप्त करने के रास्ते ही सही मायने में कम्युनिस्ट बनने की योग्यता हासिल की जा सकती है।

हमारे देश के तथाकथित कम्युनिस्ट नेताओं के आचरण में उच्च सांस्कृतिक स्तर की जरा-सी भी झलक देखने को नहीं मिलती

क्या हमारे देश के कम्युनिस्ट नामधारी नेताओं के आचरण में इस उन्नत संस्कृति का कोई स्तर देखने को मिलता है? मैं आम कार्यकर्ताओं

की बात नहीं कर रहा हूं, क्योंकि उन्होंने तो सर्वहारा संस्कृति हासिल करने का संघर्ष अभी महज शुरू ही किया है। किन्तु जो लोग पार्टी के नेता हैं, जिनके लिए इस उन्नत सांस्कृतिक स्तर हासिल करने के बाद ही कम्युनिस्ट पार्टी जैसी किसी क्रांतिकारी पार्टी का नेता होना संभव है, उनमें भी अनेक ऐसे नेता हैं जिनकी निजी सम्पत्ति है, मकान है, अपनी गाड़ी है एवं पर्याप्त मात्रा में रोजाना इस्तेमाल के कपड़ों के अलावा विलायत जाने के लिए या टी-पार्टी में शामिल होने के लिए भी अलग-अलग कपड़े हैं। फिर भी जब वे मजदूर-किसानों और आम आदमियों के बीच जाते हैं, तो सामान्य कपड़े पहनकर जाते हैं मानो वे कितने बड़े त्यागी हैं! गांधीजी से लेकर हमारे देश के आजादी आंदोलन के अधिकांश नेताओं ने घुटने से ऊपर तक कपड़ा पहन कर इस देश में देशप्रेम की एक अजीब-सी परम्परा डाल दी है! देश की जनता इतनी खोज-खबर नहीं रखती, यह देखने नहीं जाती कि उनके पास मकान है या नहीं, गाड़ी है कि नहीं या उनकी व्यक्तिगत जीवन-शैली कैसी है। जिस तरह का धोती-कुर्ता पहनकर नेता लोग सभाओं में जाते हैं, उस प्रकार के कितने जोड़े धोती-कुर्ते उनके पास हैं—जनता यह सब देखने नहीं जाती। जनता सोचती है कि इतने बड़े नेता होते हुए भी जब सामान्य आदमी की तरह कपड़े पहनकर घूमते-फिरते हैं, तो सचमुच ही वे बहुत बड़े देशप्रेमी होंगे! हमारे देश के आम लोगों की मनोभावना एवं सोच का ढंग आज भी कुछ ऐसा ही है। यह देश गुरुवादी देश है; त्याग का धर्म यहां का सनातन धर्म है। साधारण जनता को ठगने का इससे आसान तरीका और कुछ नहीं हो सकता। बुर्जुआ राजनीतिज्ञों ने आज तक जनता की इस कमजोरी से खूब नाजायज फायदा उठाया है। देश के ये तथाकथित कम्युनिस्ट लोग भी उसी प्रकार के ढोंग (hypocrisy) का सहारा लेकर जनसाधारण को ठगने की कोशिश करते हैं। मैं कहता हूं कि अगर इनके पास पैसा है—नहीं हो तो बात अलग है—नेताओं का निजी सम्पत्ति रखना जब ये लोग अनुचित नहीं मानते और बहुत से नेताओं के पास अच्छी-खासी सम्पत्ति है भी, तो जनता को ठगने के लिए साधारण कपड़े पहनकर, टूटी चप्पल पहनकर, साधु बनकर लोगों को ठगने की ये सारी कोशिशें क्यों? बहुत से नेताओं के व्यक्तिगत जीवन, घर-द्वार एवं सम्पत्ति की खोज-खबर

लेने से आप देखेंगे कि उनके पास लाखों की सम्पत्ति है; वे अपने बच्चों का लालन-पालन ठीक उसी तरह करते हैं जैसे कि धनी लोग किया करते हैं, उनके घर की औरतें भी अमीर घरानों की औरतों की तरह ही जीवन यापन करती हैं। इन सब नेताओं में से कई नेता पार्टी-फंड में बहुत रुपये चंदा (donation) भी देते हैं।

जनसाधारण, यहां तक कि पार्टी कार्यकर्ता भी, नेताओं के ऐसे आचरणों पर विचार नहीं करते, बल्कि वे घमंड के साथ कहते हैं कि अमुक नेता ने पार्टी फंड में इतने लाख रुपये चंदा दिया है। अमुक नेता पार्टी को इतने लाख रुपये देते हैं—मानो वे महान त्यागी पुरुष हों! पार्टी को वे बहुत रुपये देते हैं। उनके पास बहुत सम्पत्ति है, इसलिए आमदनी का एक हिस्सा वे दे देते हैं। लेकिन पार्टी कार्यकर्ता यह नहीं पूछते कि पूरी सम्पत्ति ही क्यों नहीं दे देते हैं? वे तो एक आत्म समर्पित क्रांतिकारी हैं, एक कम्युनिस्ट हैं, जो निजी संपत्ति को अन्याय व अत्याचार पर आधारित समझते हैं। वे तो उस निजी सम्पत्ति को खत्म करने (abolition) के लिए लड़ रहे हैं; वे तो सामाजिक मिल्कियत कायम करना चाहते हैं। क्रांति के लिए जो जान तक दे देने की बड़ी-बड़ी बातें कहते फिरते हैं, उन्हें तो अपनी निजी सम्पत्ति जैसी तुच्छ चीज नि:संकोच और अनायास ही उस क्रांति के लिए दे देनी चाहिए। फिर वे अपनी निजी सम्पत्ति को क्यों बरकरार रखे हुए हैं? सम्पूर्ण सम्पत्ति को ही पार्टी को क्यों नहीं दे देते? ऐसा सवाल पूछने पर वे शायद यह कहेंगे कि देने में कोई ऐतराज नहीं हैं; पार्टी मांगेगी तो दे देंगे। लेकिन सवाल है कि पार्टी मांगेगी ही क्यों? वे तो क्रांतिकारी हैं, जो क्रांति के लिए जान तक देने को तैयार हैं, तो उन्होंने निजी सम्पत्ति जैसी छोटी चीज को स्वेच्छा से ही क्यों नहीं दे दिया? उनसे पार्टी के मांगने का सवाल ही क्यों? पार्टी मांगेगी या नहीं—यह तो पार्टी अपनी जरूरत के मुताबिक विभिन्न पहलुओं से सोच-विचार कर तय करेगी। मगर देखा जाता है कि ये सभी नेता जो भाषण देते समय क्रांति के लिए अपनी जान तक देने को तैयार हो जाते हैं, क्रांति के लिए अपनी निजी सम्पत्ति को बिना दुविधा के स्वेच्छा से दे नहीं सकते। ऐसे नेताओं द्वारा चाहे और जो कुछ भी काम क्यों न हो सके, लेकिन क्रांतिकारी पार्टी का नेतृत्व करने जैसी महान जिम्मेदारी का काम किसी तरह भी इनको नहीं दिया जा सकता।

नेताओं के इस तरह के आचरण को देखकर आज भी ज्यादातर लोगों के मन में ऐसी धारणा बनी हुई है कि राजनीति करना उन्हीं के लिए संभव है, जिनके यहां खाने का अभाव नहीं है और जो अमीर हैं। हम लोगों ने बचपन में सुना था, मेरे पिताजी भी मुझसे कहते थे कि जिनके यहां खाने का बन्दोबस्त है, देश के लिए लड़ना भी उन्हीं को शोभा देता है। आज भी गरीब जनता और मध्यम दर्जे के परिवारों में ऐसे बहुत से लोग हैं, जो कम्युनिस्ट विचार को पसंद करते हैं और कुछ करना भी चाहते हैं, मगर इन तथाकथित नेताओं के जीवन और आचरण को देखकर सोचते हैं कि राजनीति केवल वे ही लोग कर सकते हैं, जो खुशहाल और निश्चिंत हैं। इस तरह इन पार्टियों के ये नेता लोग क्रांतिकारी आंदोलन का जो जुझारूपन (militant fervour) है, जो आत्मा है, जो महानता (nobility) का पहलू है, उसे ही खत्म कर रहे हैं।

फिर ये नेता ही देश के युवक-युवतियों, छात्रों का क्रांति के लिए आह्वान करेंगे, उनसे कहेंगे—लड़ो, जेल जाओ, लाठी-गोली खाओ और अपने बेटे-बेटियों से कहेंगे—पहले अच्छी तरह से पढ़-लिख कर इन्सान बनो, उसके बाद जो अच्छा लगे करना। अपने बेटे के लिए एक अच्छी नौकरी और बेटी के लिए एक अच्छा दुल्हा तलाशेंगे और देश के लड़के-लड़कियों से क्रांति के लिए लड़ने को कहेंगे। नेताओं के इस तरह के ढोंग के कारण ही एक इतनी महान विचारधारा केवल आर्थिक मांगों की अदायगी के आंदोलन के मकड़जाल में ही फंसी रही और आज तक देश की जनता को क्रांति की प्रेरणा से जगा नहीं सकी।

हमारे देश में ऐसे अनेक कम्युनिस्ट नेता हैं, जो बाहर से बहुत दिलदार और सीधे-साधे दिखलाई देते हैं, लेकिन अपने घर में, निजी सम्पत्ति इकट्ठा करने के मामले में, आराम से जिन्दगी बिताने के बारे में, दूसरे-दूसरे खर्चों के मामले में, घर-परिवार चलाने और अपने बाल-बच्चों के भविष्य बनाने के मामले में उनका पूरा और विशेष ध्यान रहता है। ये लोग निजी सम्पत्ति और निजी धन बढ़ाते जाते हैं, लेकिन मजदूर-किसान तथा आम जनता के बीच बहुत साधारण रूप बनाकर जाते हैं। इस प्रकार बुर्जुआ ढोंगियों की तरह मजदूरों से अपने व्यक्तिगत जीवन के सही रूप को छिपाकर और उनके सामने एक महान त्यागी का रूप धारण कर जाने का क्या अर्थ है? यह तो मजदूरों को ठगना है; यह तो मुल्क के आम

अवाम को ठगना है। मुल्क के तथाकथित वामपंथी व साम्यवादी नेता मुल्क के अवाम की प्रशंसा पाने के उतावलेपन में आज इसी रास्ते कम्युनिस्ट विचार के प्रचार में रत हैं!

फिर, एक और तरह के नेता हैं, जिनके पास धन-दौलत वगैरह कुछ भी नहीं है, निजी सम्पत्ति नाम की कोई चीज नहीं है। लेकिन वहां भी आप देखेंगे कि वे अपने त्याग के बदले में पार्टी में बहुत कुछ पाना चाहते हैं। कोई नेतृत्व पद चाहते हैं। वे रोजमर्रे के जीवनयापन में कहीं कुछ दिक्कत-परेशानी होने से असंतोष जाहिर करते हैं, क्योंकि वे आराम चाहते हैं। अगर पार्टी जरूरत समझते हुए स्वाभाविक तौर पर किसी के लिए खाने-पहनने की थोड़ी अच्छी व्यवस्था कर पाती है, तो वे उस तरह से रहेंगे, लेकिन आराम के लिए उनके मन में कोई लोभ पैदा नहीं होगा, फिर खराब हालात में जब रहना पड़े, तो उसके लिए उनके मन में कोई शिकवा-शिकायत नहीं रहेगी—यही है सही क्रांतिकारी मनोवृत्ति। लेकिन ये नेता अपने असीम(!) त्याग के बदले कुछ पाना चाहते हैं, चाहे वह नेतृत्व-पद हो या व्यक्तिगत ऐशो-आराम और 'यह कुछ' पाने के लिए वे पार्टी पर तरह-तरह का दवाब डालते हैं। वे सोचते हैं कि चूंकि उन्होंने बहुत त्याग किया, बहुत मेहनत की, पार्टी के लिए बहुत कुछ किया, इसलिए अब वे पार्टी से कुछ पाने के अधिकारी हैं। वे इसका विचार तक नहीं करते कि जनसाधारण और पार्टी की वह सब देने की क्षमता है या नहीं। इस त्याग की धारणा से ही कुछ पाने और चाहने की मनोभावना पैदा होती है। यह चाह विभिन्न लोगों में विभिन्न तरह की होती है। कोई रुपया-पैसा चाहता है, तो कोई नाम चाहता हैं; कोई नेता-पद चाहता है और उसके लिए झगड़ा करता है, तो कोई कुछ विशेष सुविधाएं, मनमाफिक चलने का लाइसेन्स चाहता है। लेकिन चाहे जिस रूप में भी प्रकट हो इन सभी के पीछे बुर्जुआ संस्कृति तथा व्यक्तिवाद का ही प्रभाव काम करता है।

कष्टमय दिखाई पड़ने वाले क्रांतिकारी जीवन के अनवरत संघर्षों में जो मानसिक शांति और खुशी महसूस होती है—वह सामान्य आरामदेह जीवन में कभी नहीं मिल सकती

पहले यह साफ हो जाना चाहिए कि कम्युनिस्ट विचारधारा कोई

त्याग की विचारधारा नहीं है। हमने कुछ भी त्याग नहीं किया। केवल एक क्षुद्र घिनौने जीवन को छोड़कर एक महान जीवन को अपनाया भर है। क्या इसको त्याग कहेंगे? त्याग का मायने क्या है? मान लीजिए कि आप एक झोपड़ी में रहते थे और आपको इसके बदले में एक राजमहल दे दिया जाये और आप उस टूटी-फूटी गंदी झोपड़ी को छोड़कर राजमहल में रहने लगे, तो झोपड़ी छोड़कर राजमहल में आने को क्या आप त्याग मानेंगे? कोई भी ऐसा नहीं सोचता, आप भी नहीं। क्योंकि 'त्याग' तो होता है बदले में कुछ भी नहीं चाहते हुए कुछ देना या सब कुछ दे देना। क्या यह वैसा ही है? यह तो ऐसा है कि आपने असल में जितना छोड़ा है, उससे बहुत ज्यादा ही पाया है। कम्युनिस्ट अपने क्रांतिकारी जीवन को राजमहल के जीवन से भी बहुत बड़ा समझते हैं। वे जिस जीवन को छोड़कर आये हैं, वह एक क्रांतिकारी के लिए उसी झोपड़ी के जीवन जैसा सिर्फ दुखमय और घिनौना ही नहीं, बल्कि क्षुद्र, नीचता भरा और अपमानजक है। इसलिए इस पहलू से विचार करने पर हम पाते हैं कि एक सही क्रांतिकारी ने कुछ भी 'त्याग' नहीं किया है, बल्कि वह जो कुछ छोड़कर आया है अर्थात घर-द्वार, रुपया-पैसा, धन-सम्पत्ति और ऐशो-आराम वगैरह, उसकी तुलना में लाखों-करोड़ों गुना से भी अधिक बड़ी चीज उसने पा ली है। उसने वापस पा लिया है अपना सही आत्म-सम्मानबोध। **क्रांतिकारियों के हजारों दुःख-दर्द, अभाव, असुविधाएं और तकलीफें देखकर आम लोग दुखित होते हैं। लेकिन उसी दुखमय क्रांतिकारी जीवन के निरंतर संघर्ष के बीच में रहकर एक क्रांतिकारी जो आनन्द और शांति पाता है; मकान, गाड़ी, आराम आदि के बीच में रहकर भी एक साधारण आदमी उसका थोड़ा-सा अंश भी नहीं पा सकता है। किसी क्रांतिकारी के लिए क्रांति से बड़ी सम्पदा, क्रांतिकारी जीवन से बेहतर जीवन और कुछ भी नहीं है।** इसलिए क्रांति के लिए क्रांतिकारी जीवन को अपनाने के वास्ते अगर कुछ भी छोड़ना पड़े, यहां तक कि अपने जीवन को भी, तो उसे भी वह त्याग नहीं समझता है। अगर ऐसा नहीं होता है और जो कुछ वह छोड़कर आया है, उसके प्रति उसके मन में थोड़ा-सा भी मोह, जरा-सा भी दर्द और क्षोभ कहीं जमा रह जाता है, तो चीन के क्रांतिकारी लम्बे तीस वर्षों तक जंगलों-पहाड़ों में जान हथेली पर

रखकर संघर्ष नहीं कर पाये होते। क्रांतिकारी जीवन में एक ऊंचे दर्जे का मर्यादाबोध एवं आनन्द का अहसास नहीं हो पाने से वियतनाम के क्रांतिकारी लोग दुश्मन की इतनी बड़ी शक्ति के विरुद्ध दिन-पर-दिन, रात-पर-रात, वर्षों तक इतना बड़ा रक्त-रंजित संघर्ष करने की प्रेरणा कहां से पाते? **इस क्रांतिकारी जीवन की आकांक्षा किसी में प्रबल रूप से पैदा होने पर ही वह क्रांतिकारी बन सकता है।** जबकि हमारे देश के इन कम्युनिस्टों को अगर कुछ छोड़ना पड़ता है, तो वे अपने को महात्यागी समझने लगते हैं। आखिर उन्होंने त्याग किया तो क्या त्यागा? घर-मकान, धन-सम्पत्ति, ऐशो-आराम—बस यही तो? इस मायने में तो इस देश में गांधीवादियों ने इससे बहुत अधिक त्याग किया है। लेकिन अपने को कम्युनिस्ट कहने वाले लोग इसे 'त्याग' क्यों मानते हैं? हालांकि यह बात सच है कि एक सही क्रांतिकारी जब क्रांतिकारी विचारों से प्रेरित होता है—आम आदमी के जीवन की आकांक्षाएं जब उसके लिए तुच्छ हो जाती हैं, तब आम आदमी ऐसे कम्युनिस्टों को, जो सब कुछ छोड़कर क्रांतिकारी लड़ाई में अपने को झौंक देते हैं, साधारण अर्थ में महान त्यागी ही समझने लगते हैं। मगर एक कम्युनिस्ट इसे त्याग के रूप में क्यों लेगा? क्या क्रांति की तुलना में घर-मकान, गाड़ी, धन-सम्पत्ति, ऐशो-आराम वगैरह को ही ये लोग ज्यादा मूल्यवान समझते हैं?—अर्थात इन सब चीजों के प्रति उनके मन के किसी गुप्त कोने में प्रबल आकर्षण मौजूद है, तभी तो। इसलिए जो लोग ऐसा सोचते हैं कि उन्होंने देश के लिए बहुत त्याग किया, उनके मन में उसके बदले में कुछ पाने की भावना आती है—चाहे वह धन-सम्पत्ति पाने की भावना हो या सत्ता-प्रभुता पाने की। हमारे देश के तथाकथित कम्युनिस्ट भी 'त्याग' के बदले आज कुछ चाहते हैं। इनका त्याग आज पूरे देश पर बोझ बन गया है।

यह बात भी सच है कि इनके बीच ऐसे भी लोग हैं, जो धन-सम्पत्ति, सत्ता-प्रभुता (power position) वगैरह नहीं चाहते, वे केवल क्रांति ही चाहते हैं। लेकिन वे भी सोचते हैं कि क्रांति के लिए उन्होंने बहुत कुछ त्याग किया या कर रहे हैं। 'त्याग' की ऐसी मनोभावना मन में रह जाने से क्या होता है? कठिन एवं प्रतिकूल परिस्थिति में पड़ने अथवा संघर्ष के दौरान आकांक्षित फल नहीं मिलने से मनुष्य के प्रयासों पर से धीरे-धीरे

उनका विश्वास एकदम उठ जाता है। जो लोग गाड़ी-मकान नहीं चाहते हैं, सत्ता के लोभ और पचड़े में नहीं फंसना चाहते हैं, ऐसे गांधीवादियों की हमारे देश में क्या हालत हुई है? हालांकि उन त्यागियों में वे अपवाद जैसे हैं, फिर भी, उन्होंने मनुष्य के भविष्य निर्माण के संघर्ष के प्रति अपनी आस्था खो दी है। वे निष्क्रिय और निराश हो गये हैं। वे एक प्रकार के 'सिनिक' (नकचढ़े, जिन्हें सभी स्वार्थी प्रतीत हों) हो गये हैं। इस प्रकार त्याग की यही दो चरम परिणतियां हैं। या तो ऐसे 'त्याग' के बदले में आती है कुछ पाने की मनोभावना—चाहे वह जिस रूप में भी हो; या फिर अगर समय के गतिपथ पर जीवन का आकांक्षित फल न मिले, तो संघर्ष की जटिल परिस्थिति में असफलता का मुंह देखने पर निराशा दिखाई देती है। वे सभी मानवीय प्रयासों एवं संघर्षों के प्रति आस्था खो देते हैं। ऐसी हालत में उनके अतीत के क्रांतिकारी चरित्र के गुण भी खत्म होने लगते हैं और इस मायने में पहले की तुलना में जीवन में पतन भी होने लगता है। अर्थात मैं यह कहना चाहता हूं कि जिन्होंने घर-द्वार, धन-सम्पत्ति नहीं चाही, सत्ता-प्रभुता के चक्कर में नहीं फंसे और बदले में व्यक्तिगत कुछ नहीं चाहा—उनके सामने भी अगर त्याग के बारे में मार्क्सवादी धारणा नहीं रहे तो क्या होता है? वे सब कुछ देख-सुन कर निराशा-हताशा के शिकार हो जाते हैं, सभी मानवीय चेष्टाओं एवं संघर्षों पर से आस्था खो देते हैं अथवा 'सिनिक' (ऐसे नकचढ़े, जिन्हें सभी स्वार्थी प्रतीत हों) हो जाते हैं।

त्याग की विचारधारा के मनोभाव में बदले में कुछ पाने की इच्छा रह ही जाती है

आपको याद रखना होगा कि त्याग की विचारधारा क्रांतिकारी विचारधारा नहीं है। इसलिए मैंने कहा था कि हम लोगों ने कुछ भी त्याग नहीं किया। केवल एक क्षुद्र, साधारण और घिनौने जीवन को छोड़कर इस समय के सबसे महान, सबसे बड़े जीवन को अपनाया है। क्योंकि हम जानते हैं कि वह साधारण जीवन छोड़े बिना इस क्रांतिकारी जीवन को नहीं पाया जा सकता। इसी वजह से यह सब छोड़ देना हमारे लिए कोई त्याग नहीं है—किसी भी सही क्रांतिकारी के लिए नहीं है। दूसरी ओर, चीथड़ा पहनना या झोपड़ी में रहना भी

मजदूरों के जीवन का कोई आदर्श नहीं है। यह तो हमारे देश के पूंजीवादी शोषण के फलस्वरूप ही उनके जीवन में दिखाई दिया है। पूंजीवादी चक्की में पिसकर एक ओर आर्थिक दुर्दशा से पस्त, दूसरी ओर सांस्कृतिक पहलू में बुर्जुआ प्रभाव एवं अशिक्षा के चलते उनके जीवन में रुचि-संस्कृति और नैतिकता का जो स्तर दिखाई देता है, वह सर्वहारा संस्कृति कतई नहीं है। उन्हें तो इस हालत में, इस मजबूरी की हालत में धकेल दिया गया है। पूंजीवाद को ध्वस्तकर अच्छा खाना, अच्छा पहनना, उन्नत विचार, रुचि-संस्कृति, नैतिकता और मूल्यबोध की नींव पर उन्नत जीवन के लिए ही तो उनका यह संघर्ष है। तब उन श्रमिकों के पास फटे कपड़े पहनकर त्याग की मूर्ति बनकर जाने की क्या जरूरत है? अच्छे कपड़े नहीं हों, तो जो कुछ है, वही पहनकर जाना होगा। लेकिन अच्छे कपड़े रहने पर भी उसे छिपा कर रखने की क्या जरूरत है? इस तरह के ढोंग ने हमारे देश के आम लोगों के मन में एक गलत धारणा पैदा कर दी है। वे इन सारी बातों पर विचार नहीं करते। बल्कि वे अगर देखते हैं कि कोई नेता, जिनके पास भले ही कुछ नहीं हो, किसी भी तरह की निजी सम्पत्ति नहीं हो, जिन्होंने सब कुछ राजनैतिक आंदोलन में दे दिया हो, पार्टी के लिए सब कुछ दे दिया हो, लेकिन पार्टी से हमदर्दी रखने वाले किसी दोस्त या किसी हमदर्द ने उन्हें एक गरम सूट बनवा दिया हो, जिस सूट को पहनकर वे घूमते-फिरते हों—ठंड का पूरा मौसम हो सकता है कि उसी एक सूट को पहनकर बिता देते हों, तो उनके बारे में वे लोग सोचते हैं कि बड़े साहब हो गये हैं, बहुत बड़े आदमी बन गये हैं या खूब पैसा बना लिया होगा। मैं पहले ही कह चुका हूं कि आजादी आंदोलन के गांधीवादी नेताओं के आचरण के फलस्वरूप हमारे देश में ऐसी ही एक धारणा बन चुकी है कि अगर नेता जरा अच्छे कपड़े पहनें, जरूरत होने पर गाड़ी में बैठें—तब तो सब बर्बाद हो गया; यह साबित हो गया कि ये नेता न तो देश से प्रेम रखते हैं और न जनता से। लगभग इसी प्रकार की एक धारणा जनता में बनी हुई है। दूसरी ओर, कई नेता ऐसे हैं जो इन सब को पूर्वाग्रह (prejudice) कहकर और मार्क्स-एंगेल्स का दृष्टांत दिखाकर अपनी कार-कोठी रखते हैं। बहुत ही कीमती-कीमती

कपड़े पहनते हैं। इसके बारे में सोचते तक नहीं कि जनसाधारण और पार्टी की यह सब देने की क्षमता है या नहीं।

क्रांतिकारी सुख-सुविधा के अभाव में न तो दुखी होता है और न ही सुख-सुविधा मिलने पर उसमें इनके प्रति कोई आसक्ति ही उत्पन्न होती है

इन रवैयों (त्याग या एशो-आराम) में से कोई भी क्रांतिकारी रवैया नहीं है। इस विषय में एक सही क्रांतिकारी किस प्रकार का दृष्टिकोण रखता है? वह अपनी अच्छाई-बुराई, अपना भविष्य और सभी कुछ क्रांति के हित में स्वेच्छा से पार्टी और जनसाधारण पर छोड़ देता है। पार्टी अपनी ताकत के मुताबिक उसे जिस तरह रखेगी, उसे वह आनन्द के साथ, खुशी से मान लेगा। इसके लिए वह कभी भी परेशान नहीं होगा। अगर पार्टी उसके लिए दो वक्त के खाने की व्यवस्था नहीं कर सकती है, तो वह अपना इंतजाम या तो अपने आप कर लेगा या बिना खाए ही रहेगा—लेकिन खुशी-खुशी मन से, मन में किसी तरह का अफसोस नहीं रखते हुए ही इस तरह रह पाने की मानसिकता होनी चाहिए, तभी वह क्रांतिकारी है। अगर पार्टी उसके लिए कुछ अच्छे खाने का, पहनने के लिए कपड़े का या जरूरत होने पर गाड़ी का बन्दोबस्त कर देती है, तब भी उसके मन में इन चीजों के प्रति मोह या लोभ पैदा नहीं होगा। इसके द्वारा वह रईसी की आदत का शिकार नहीं बनेगा। जरूरत पड़ने पर वह बिना किसी तरह की दुविधा के एक क्षण में ये सब छोड़ दे सकता है अर्थात आराम का सामान न मिलने से भी उसके मन में किसी तरह का दु:ख या क्षोभ नहीं होगा। फिर ये सब पाने से भी इनके प्रति उसके मन में किसी तरह का मोह नहीं पैदा होगा। यही होगी एक सच्चे क्रांतिकारी की मनोभावना और इन सब चीजों के बारे में सही दृष्टिकोण।

मैंने अपने जीवन में ही देखा कि पहले जब हमने पार्टी-गठन का काम शुरू किया था, उस समय ज्यादा समर्थक नहीं थे, यहां तक कि सिर छिपाने के लिए एक कमरा भी हम नहीं जुटा पाये थे और जब कई-कई दिनों तक बिना खाए एकदम प्रतिकूल परिस्थिति में एक नयी पार्टी को गठित करने का संघर्ष करना पड़ा, उन दिनों भी इसके लिए

हमारे मन में कोई क्षोभ नहीं था। कितने ही वर्षों तक हमें चटाइयों पर सोना पड़ा और वैसे ही कितने जाड़े और गर्मी के दिन काटने पड़े। हमारे उस समय के साथी इसकी गवाही देंगे। उन्होंने देखा कि उस समय इसके लिए हमारे मन में किसी तरह की शिकायत नहीं थी। हमने कितने दिन नहीं खाया–किसी से यह बात कहने में भी शर्म आती थी, क्योंकि सोचते थे कि खाने का बन्दोबस्त नहीं कर सके, समर्थक नहीं हैं, पांच पैसे भी चन्दा नहीं जुटा सके, लोगों ने नहीं दिया, यह तो हमारी ही अक्षमता है, इसमें गर्व से कहने की बात क्या है, इसमें त्याग की बात भी क्या है? इसे कहने में भी शर्म आती थी। हम लोगों में इस तरह की ही एक भावना थी। इसके लिए हमारे मन में गर्व की ऐसी कोई भावना नहीं थी कि हम देश के लिए बहुत बड़ा त्याग कर रहे हैं, बल्कि हमारे मन में अक्षमता और असफलता के लिए लज्जा का ही भाव रहता था। मैं अपनी ही बात कह सकता हूं। उस समय भी मेरे कॉमरेडों ने मुझे जिस तरह हंसते देखा, जिस शक्ति (energy) से काम करते देखा, जिस मिजाज (mood) में रहते देखा, सिर्फ स्वास्थ्य और उम्र का सवाल छोड़ देने पर आज भी मुझे वे वैसा ही देख पाते हैं। लेकिन आज हालत कैसी है? पहले की तुलना में आज पार्टी में सदस्य बहुत बढ़ गये हैं। पहले से संसाधन (resources) भी बहुत बढ़ गये हैं। आज जरा-सा कुछ हो जाने पर दस कॉमरेड दौड़े आते हैं। अगर कमीज फट गयी, तो दस कॉमरेड आगे चले आते हैं। कई समर्थक दौड़ पड़ते हैं–एक अच्छी कमीज बनवा देने के लिए वे जोर देते हैं, नहीं लेने पर आहत महसूस (injured feel) करते हैं। उनकी भावना को ठेस लगती है। तो, इससे क्या जाहिर होता है? नेताओं को लोग ऐसे ही देते हैं। उनको आराम की आकांक्षा क्यों होगी? लोभ ही क्यों होगा? और अगर नेता बनने के बाद भी लोग उनकी फिक्र नहीं करते, तो समझना होगा कि वे ऊपर-ऊपर से बने हुए नेता हैं। वे लोग अगर जनसाधारण की सेवा सही ढंग से करें, तो जनसाधारण भी उसी तरह उनकी फिक्र करेंगे। लेकिन इस बारे में नेताओं के सतर्क नहीं रहने से क्या होता है? अगर आराम की इन चीजों के प्रति निर्लिप्त भाव न रहे, तो यह सब लेते-लेते उसके शिकार (victim) हो जाने की, आराम के शिकार बन जाने की संभावना रहती है और तभी असली दिक्कतें पैदा हो जाती हैं।

कभी किसी ने कष्ट में रहकर भी कोई शिकायत नहीं की थी, इसलिए उसका यह गुण हमेशा कायम रहेगा ही, ऐसी कोई बात नहीं है। क्रांतिकारी के तौर पर अपनी स्थिति को जांचने के लिए क्रांतिकारियों को हमेशा अपने भीतर ही संघर्ष करना पड़ता है, हर समय इसकी आत्म-परीक्षा लेनी पड़ती है, आत्मानुसंधान करना पड़ता है, समझना पड़ता है। अत: कष्ट को लेकर, अपनी मर्जी की कुछ चीज पाने की आशा लेकर किसी क्रांतिकारी की शिकायत क्यों रहेगी और अपने सामान को लेकर फिक्र क्यों होगी? कुछ मिला तो ठीक है, वरना नहीं मिलने पर भी ऐसे ही चलेगा। कभी कोई कुछ देगा तो राजी-खुशी से ले लेगा, मगर वहां भी किसी प्रकार के ढोंग और दिखावे का सहारा नहीं लेगा। संभव है कि उसके पास एक 'सूट' है, जो किसी ने दिया है, लेकिन उस सूट को पहनने से लोग व्यंग्य कसते हैं, केवल इसलिए लोगों का खयाल करके, कर्जा लेकर एक और अति साधारण धोती-कुर्त्ता पहनकर और ढोंग रचकर लोगों को यह दिखाना कि 'मैं कितना सीधा-सादा हूं'—इसका नाम क्या है? इसका नाम है दिखावा, ढोंग; इसका नाम है जनसाधारण की मानसिकता के पीछे-पीछे चलना, जनता को शिक्षित करना नहीं। जनसाधारण के साथ हमारे चलने की रीति क्या होनी चाहिए? जनसाधारण की मानसिकता को ध्यान में रखते हुए हमारे चलने की रीति ऐसी न हो कि हम उनसे बहुत ज्यादा आगे बढ़ जायें और फिर ऐसी भी न हो कि हम उनके पीछे-पीछे चलने लगें। अर्थात हम जनसाधारण के बीच में ही रहेंगे, लेकिन जनसाधारण के मन में बुर्जुआ लोगों ने जो जाल बुन रखा है, उस जाल को तोड़ने की खातिर ही हम उनके बीच में रहेंगे। बुर्जुआ संस्कृति की जो ग्रंथियां जनसाधारण की मानसिकता में, नैतिकता में, चिंतन प्रक्रिया में सूक्ष्म जाल की तरह फैल गयी हैं, उन्हें केवल क्रांतिकारी नारों से कभी भी नहीं तोड़ा जा सकता। इसे तोड़ने के लिए जनसाधारण को क्रांतिकारी लड़ाइयों में उतारना होगा, राजनैतिक एवं आर्थिक संघर्षों में शामिल करके ही उन सबको तोड़ना होगा। साथ ही साथ, याद रखना होगा कि यह तोड़ने का काम तभी पूरा करना संभव हो सकेगा, जब संस्कृति, आचरण और छोटी-मोटी विभिन्न बातों में भी उन पर काम करने वाले बुर्जुआ प्रभाव को हम अपने व्यवहार के द्वारा दूर कर सकेंगे। केवल तभी हर प्रकार

की बुर्जुआ संस्कृति का प्रभाव–जैसे कि साधु-संतों के प्रति उनका आकर्षण, 'त्याग-धर्म' के प्रति उनका मोह वगैरह–उनके बीच से दूर होगा। तभी इन सभी के सही वर्ग-चरित्र और वर्ग-स्वरूप को भी वे समझ सकेंगे। वे यह समझ सकेंगे कि कौन सच्चा त्यागी है, कौन सच्चा आदर्शवान है, कौन-सा चिंतन सही है, कौन-सा रास्ता सही क्रांतिकारी रास्ता है और उनकी मुक्ति कैसे होगी। जिस दिन वे यह समझ जायेंगे एवं जैसे-जैसे बुर्जुआ संस्कृति और बुर्जुआ राजनीति का प्रभाव उन पर से हटता जायेगा, 'स्टन्ट' करने वालों का प्रभाव भी उनके ऊपर से हटता जायेगा। इसलिए जिस तरह क्रांतिकारी राजनीति को उनके बीच ले जाना होगा, ठीक उसी तरह इस राजनीति के साथ-साथ बुर्जुआ संस्कृति के खिलाफ एक प्रचंड जेहाद की मनोभावना लेकर सर्वहारा संस्कृति को भी उनके बीच ले जाना होगा। लेकिन हमारे देश के तथाकथित कम्युनिस्ट नेता अपने आचरण के जरिये जनता को इस संबंध में सचेत करना तो दूर, उल्टे वे जनसाधारण के बीच संस्कृति, रुचि, विचारधारा के विभिन्न पहलुओं में बुर्जुआ चिंतनधारा का जो प्रभाव पत्थर जैसा जमा पड़ा है, अपने आचरण और ढोंग के द्वारा उसे ही टिकाए रखने मे मदद कर रहे हैं। जनता में अगर बुर्जुआ संस्कृति का प्रभाव इसी तरह बना रहा, तो आर्थिक मांगों को लेकर हजारों जुझारू लड़ाइयां चलाने के बावजूद जनता में क्रांतिकारी दृष्टिकोण, सोच-विचार और क्रांतिकारी संगठन बनाने के रास्ते में वह घोर बाधा पैदा करता रहेगा।

व्यक्तिगत आचरण के बारे में किसी तरह का सवाल करने से ये तथाकथित नेता कहेंगे कि यह सब तो व्यक्तिगत मामला है। इन पार्टियों के साधारण कार्यकर्ता भी इसे महज उनका व्यक्तिगत मामला समझते हैं। मानो उनके दो प्रकार के रूप हैं–एक व्यक्तिगत और दूसरा राजनैतिक। जैसे कि मानो व्यक्तिगत जीवन का चिंतन, अच्छा लगना, बुरा लगना, जिम्मेदारी का ख्याल, कर्तव्य की भावना, न्याय-नीति की धारणाएं–ये सारी चीजें बुर्जुआ संस्कृति और बुर्जुआ तौर-तरीके की हो सकती हैं, केवल राजनीति के मामले में ही मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्तालिन और माओ त्से-तुंग की कुछ किताबें रटकर गरम-गरम भाषण दे पाने से और आर्थिक मांगों को लेकर कुछ जुझारू आंदोलन संगठित

कर सकने से ही वे सर्वहारा क्रांतिकारी और मार्क्सवादी-लेनिनवादी हो जायेंगे। कम्युनिस्ट बनने की कठिन साधना और जटिल संघर्ष के विषय को इन्होंने कितना सरल कर दिया! इसी वजह से इन पार्टियों में पार्टी-सदस्यता देने का तरीका कितना सरल कर दिया गया है। कार्यकर्ता जनसाधारण के क्रांतिकारी संघर्षों में नियमित व प्रत्यक्ष रूप से काम करते हैं या नहीं और जीवन के हर क्षेत्र में चिंतन-भावना, ध्यान-धारणा एवं जीवन-शैली को कम्युनिस्ट विचारधारा के आधार पर नये सिरे से ढालने के लिए समझौतारहित संघर्ष करते हैं या नहीं—यह सब देखने की मानो कोई जरूरत ही नहीं है; सिर्फ 'जनता की जनवादी क्रांति' और 'राष्ट्रीय जनवादी क्रांति' मानते हैं या नहीं, चुनावों के समय पोस्टर चिपका सकते हैं या नहीं, चुनाव में जाली वोट डाल सकते हैं या नहीं, बस इतना ही होना चाहिए। ऐसे कम्युनिस्टों की पाकेट में अगर पार्टी कार्ड न रहे, तो इनके आचरण, रुचिगत स्तर, नैतिक स्तर, व्यवहार और जीवन शैली को देखकर कोई समझ ही नहीं सकेगा कि ये कम्युनिस्ट हैं या नहीं।

क्रांतिकारी सिद्धांत केवल उन्हीं से सीखें जो अपने व्यक्तिगत जीवन में मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धांतों के अनुसार आचरण करने का प्रयास कर रहे हैं

इसलिए देश के क्रांतिकारी कार्यकर्ताओं से, मजदूरों से और जो मार्क्सवाद-लेनिनवाद की सीख लेना चाहते हैं, उनसे मैं कहूंगा कि इन क्रांतिकारी सिद्धांतों को उन्हीं से सीखना होगा, जो मार्क्सवाद-लेनिनवाद की नीति के अनुसार अपने व्यक्तिगत जीवन को संचालित करने की कोशिश करते हैं, संघर्ष चलाते हैं और इसमें सफल हुए हैं। जो आज भी व्यक्तिगत जीवन, आचार-व्यवहार, नैतिकता और विचारधारा में बुर्जुआ संस्कृति के शिकार हैं, उनसे आप मार्क्सवाद-लेनिनवाद न सीखें। क्योंकि मार्क्सवाद-लेनिनवाद के नाम पर वे जो कुछ सिखलाते हैं, क्रांति के नाम पर जो कुछ बतलाते हैं, वह सब असल में एकदम गलत है। राजनैतिक लफ्फाजी के बाहर व्यक्तिगत आचरण के क्षेत्र में जो लोग मनचाहा करते हैं, संस्कृति के क्षेत्र के विभिन्न विषयों में जिनके नेताओं और कार्यकर्ताओं की मनचाही व्याख्या रहती

है–उनके इस तरीके से भले ही एक पेटी-बुर्जुआ पार्टी चल सकती हो, पर किसी मार्क्सवादी पार्टी के चलने की न तो यह रीति है और न ही इस तरह से वह चल सकती है। जो पार्टी मार्क्सवाद के नाम पर ऐसा आचरण करती हो, समझ लेना होगा कि वह पार्टी मार्क्सवाद का तमगा लटकाए हुए असल में एक पेटी-बुर्जुआ पार्टी है। वह क्रांति के नाम पर जो कहती है, वह लफ्फाजी है, खोखले क्रांतिकारी नारे हैं, उनमें क्रांतिकारी सिद्धांत की और इसलिए क्रांति की भी आत्मा नहीं है। अतः उनसे मार्क्सवाद सीखने की कोशिश करने से मार्क्सवाद के नाम पर दूसरी ही कोई चीज सीखेंगे। नतीजतन, 'मार्क्सवाद'-'मार्क्सवाद' कहकर इस प्रकार जो अमल में आज तक इस देश में लाया गया है, वह सही क्रांतिकारी मार्क्सवाद पर अमल हो ही नहीं पाया। दरअसल यहां मार्क्सवाद के सैद्धांतिक पहलुओं, इसकी संस्कृति की मर्मवस्तु की साधना (cult) हुई ही नहीं है और इसकी विचारधारा के आधार पर सही क्रांतिकारी राजनीति पर अमल हुआ ही नहीं है। हकीकत यह है कि इन तथाकथित मार्क्सवादियों के व्यवहार और आचरण के चलते मार्क्सवाद जैसे, कम्युनिज्म जैसे, एक इतनी ऊंची और महान विचारधारा की इज्जत भी आज जनसाधारण की निगाह में बहुत हद तक नीचे गिर गयी है। इसलिए मैं एक बार फिर अनुरोध करूंगा कि अगर मार्क्सवाद-लेनिनवाद सीखना ही हो, क्रांतिकारी सिद्धांत को अगर अपनाना ही हो तो ऐसी पार्टी और नेता से सीखिए जो व्यवहार, जीवन और आचरण में भी क्रांतिकारी हो। जिन लोगों की सिर्फ बातें क्रांतिकारी लफ्फाजी हैं, मगर व्यवहारिक जीवन बुर्जुआ या पेटी-बुर्जुआ जैसा ही है, जो लोग क्लास लेते हैं क्रांति की, मगर जिनके आचरण, रुचि एवं सामाजिक संबंध का तरीका बुर्जुआ या पेटी-बुर्जुआ संस्कृति से प्रभावित है–जिन लोगों का व्यक्तिगत जीवन, जिंदगी के विभिन्न मामलों में मार्क्सवादी आचरण, दर्शन-चिंतन के साथ न तो कोई मेल (consistency) रखता है और न उसके द्वारा संचालित ही होता है–मेरा अनुरोध है कि लफ्फाजी करने वाले उन तथाकथित क्रांतिकारियों से आप क्रांति का सिद्धांत और मार्क्सवाद-लेनिनवाद सीखने की कोशिश कभी न करें। इस प्रकार के नेताओं से, उनकी क्रांतिकारी गरम-गरम बातों से आप

जितना ही दूर रहेंगे उतना ही आपका मंगल होगा एवं सही क्रांतिकारी आंदोलन के लिए भी अच्छा होगा।

राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आंदोलनों को संयोजित करके ही सही क्रांतिकारी संघर्ष चलाया जा सकता है

आपको समझना चाहिए कि कम्युनिस्ट बनने की साधना एक कठिन साधना है। यह क्रांतिकारी राजनीति एक सर्वव्यापक आंदोलन है, जो राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलनों को संयोजित (integrate) करके गठित होता है। यह संयोजन पूरा कर पाने से ही सर्वहारा क्रांतिकारी राजनैतिक आंदोलन को सही रूप से चला पाना संभव है। यह न होने से हजारों लड़ाइयों के बावजूद आखिर तक मजदूर-किसानों की राजनैतिक सत्ता का उभार एवं लड़ाई के हथियार—जनता के अपने क्रांतिकारी संगठन नहीं बन सकते। इसलिए सर्वहारा क्रांतिकारी आंदोलनों में नेताओं की, यहां तक कि कार्यकर्ताओं की भी साधना का विषय है सम्पूर्ण जीवन में समेटकर इस क्रांति की प्रक्रिया का निर्माण करना। कम्युनिस्ट बनने का यह महान संघर्ष जीवन के सभी पहलुओं से संबंधित है—व्यक्तिगत जीवन से लेकर राजनैतिक-आर्थिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन तक—यहां तक कि यौन जीवन और प्रेम के मामलों से भी।

याद रखें, जीवन के हर क्षेत्र में मौजूदा समाज की न्याय-नीति, कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व की जिस भावना और जिन मूल्यबोधों (values) से आज हम परिचालित होते हैं, वे सभी धारणाएं बुर्जुआ नैतिकता की धारणाएं (moral values) हैं और इनकी जगह कम्युनिस्ट नैतिक धारणाएं हासिल करने के लिए हमेशा सचेत संघर्ष करते हुए एवं बुर्जुआ वर्ग दृष्टिकोण की जगह सर्वहारा वर्ग दृष्टिकोण, जिसे हम द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी या मार्क्सवादी दृष्टिकोण कहते हैं, लाने के लिए लगातार सही सचेत संघर्ष के जरिये ही हम अपने को सही कम्युनिस्ट बना सकते हैं। इस संघर्ष को पार्टी के अंदर हमेशा एक जीवंत संघर्ष के रूप में जारी रखना जरूरी है और साथ ही साथ देश में क्रांति की पूरक मानसिकता बनाने में सहायता करने वाला यह वैचारिक व सांस्कृतिक आंदोलन पार्टी के बाहर भी गठित करना जरूरी है। यहां एक बात

हमेशा याद रखनी चाहिए कि अकेले-अकेले या पार्टी से बाहर रहकर इस संघर्ष को चला पाना कभी भी संभव नहीं हैं—सामूहिक संघर्ष ही इसकी एकमात्र गारंटी है।

अब विचार करके देखा जाये कि क्या मार्क्सवादी दर्शन को अपने जीवन-दर्शन के रूप में मान लेने के साथ-साथ ही हम कम्युनिस्ट बन जाते हैं? लेनिन ने कहा है—नहीं, इसके द्वारा हम कम्युनिस्ट बनने की सिर्फ इच्छा ही जाहिर करते हैं। मैंने पहले ही कहा है कि पार्टी के अंदर कम्युनिस्ट बनने का जो सतत संघर्ष है, अपने को स्वेच्छा से उस संघर्ष में समर्पित करके सचेत रूप से उस संघर्ष को चलाते हुए ही हम कम्युनिस्ट बन सकते हैं—वर्ना नहीं। लेकिन तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टियों के नेताओं ने कम्युनिस्ट बनने के लिए जरूरी इस मूल संघर्ष से बचते हुए पार्टी बना लेने की कोशिशें की। **नतीजतन पार्टी का नेतृत्व सही कम्युनिस्ट पार्टी के गुण सम्पन्न एक सामूहिक नेतृत्व को जन्म देने की बजाय औपचारिक जनतांत्रिक (formal democratic) नेतृत्व में तब्दील हो गया और पार्टी को जनवादी केन्द्रीयता पर आधारित पार्टी की बजाय एक साझे राजनैतिक कार्यक्रम के आधार पर विभिन्न व्यक्ति-केन्द्रित राजनैतिक गुटों के एक सम्मिलित संघर्ष के प्लेटफार्म में तब्दील कर डाला है।**

इस विषय में बहुत से लोगों की ऐसी धारणा है कि चूंकि नेता लोग पेटी-बुर्जुआ परिवारों से आये हैं, इसलिए पार्टी नेतृत्व ऐसा हो गया। अर्थात नेता अगर मजदूर वर्ग के परिवारों से आये होते, तो वे सही कम्युनिस्ट नेतृत्व गठित कर पाते। इस प्रकार की गलत धारणा बहुतेरों के मन में है। अगर यह बात सही होती, तो मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और माओ त्से-तुंग कभी कम्युनिस्ट नहीं बन सकते थे, क्योंकि वे सभी पेटी-बुर्जुआ परिवारों से आये हुए थे। फिर यह धारणा सही होती, तो इंग्लैंड की 'लेबर-पार्टी' ही सही कम्युनिस्ट पार्टी बन गयी होती, क्योंकि इस पार्टी के सभी नेता श्रमिक परिवारों से ही आये हुए हैं एवं शुरू में इस पार्टी के नेता अपने को विशुद्ध मार्क्सवादी ही कहते थे। लेकिन इस पार्टी के बारे में हमारा तजुर्बा क्या है? इंग्लैंड की यही 'लेबर पार्टी' वहां की एकाधिकारी पूंजी की निर्लज्ज दलाली करती है। हमारे देश में भी निहारेन्दु दत्ता मजूमदार ने इस प्रकार के गलत विचार

के आधार पर एक लेबर पार्टी बनायी थी। लेकिन इसके द्वारा सही कम्युनिस्ट पार्टी को जन्म देना संभव नहीं हुआ। उसी तरह हमारे देश में एक 'बोल्शेविक पार्टी' बनी थी, जिसका अस्तित्व भी आज नहीं के बराबर है। किन बातों से उन्होंने अपने प्रारंभ काल में बहुत से मजदूरों को पार्टी के प्रति आकर्षित किया था? वे लोग कहते थे–'बाबू लोगों को लेकर मजदूर वर्ग की पार्टी नहीं बन सकती; प्रोलेरिटेरियेटों (सर्वहाराओं) को लेकर पार्टी संगठित करने की चेष्टा इस देश में हुई नहीं, केवल इसी कारण से इस देश में सही कम्युनिस्ट पार्टी नहीं बन सकी। लेनिन ने कहा है कि सर्वहारा पार्टी में केन्द्रीय कमेटी से लेकर सभी कमेटियों में 60 प्रतिशत सदस्य मजदूर वर्ग के परिवारों से आये हुए लोग होंगे। वर्ना इसकी कोई गारंटी नहीं कि मजदूर वर्ग की ही पार्टी बनेगी। अत: इस देश में मजदूर वर्ग के परिवारों से आये लोगों के नेतृत्व में ही कम्युनिस्ट पार्टी को जन्म देना होगा।'

लेनिन ने किसी कम्युनिस्ट पार्टी को वर्ग के ख्याल से पूरा मजबूत करने की नीयत से वैचारिक रूप में उपरोक्त बातें कही हैं। अगर किसी पार्टी में ऐसी स्थिति लायी जा सके, तो बहुत ही अच्छा है। लेकिन लेनिन यथार्थवादी थे और इसलिए उन्होंने पिछड़े देशों में मजदूर वर्ग के नेतृत्व के सवाल पर वर्गावनत बुद्धिजीवी (declassed intelligentia) के सिद्धांत को भी स्थापित किया था। इन्होंने लेनिन के इस सिद्धांत को कोई महत्व नहीं दिया। वास्तव में हमने, लेनिन की अपनी पार्टी जिसने रूस में सर्वहारा क्रांति सफल की थी, उसकी अन्दरूनी स्थिति को किस रूप में पाया? चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की हालत भी कैसी है? इन सब पार्टियों के अधिकतर नेता-कार्यकर्ता पेटी-बुर्जुआ परिवारों से ही आये हैं, क्योंकि इन सब पिछड़े देशों में सामाजिक हालत, शिक्षा आदि विभिन्न कारणों से यह स्वाभाविक ही है कि गांवों एवं शहरों के निम्न मध्यम दर्जे के बुद्धिजीवी परिवारों से ही ज्यादा संख्या में पार्टी कार्यकर्ता आयेंगे। इसी वजह से पार्टी-गठन के मामले में पार्टी के वर्ग-चरित्र की गारंटी के लिए 'वर्गावनत सर्वहारा क्रांतिकारी' (declassed proletarian revolutionary) बनाने का संघर्ष ही इन देशों में अत्यंत महत्वपूर्ण है। अमेरिका, इंग्लैंड एवं फ्रांस जैसे औद्योगिक रूप से

विकसित देशों में क्रांतिकारी पार्टी बनाने के सिलसिले में लेनिन की उपरोक्त पहली बात वास्तविक आधारशिला का काम कर सकती है। लेकिन पिछड़े देशों के लिए उसी तरह का आधार नहीं हो सकती। 'सिर्फ मजदूरों को लेकर पार्टी बनानी होगी', लेनिन के इस सिद्धांत को हू-ब-हू इस देश में पार्टी गठन का आधार बनाये जाने के पीछे यहां दो कारण हो सकते हैं। पहला यह कि वे लोग मजदूर होने के नाते मजदूरों का जो 'इगो' अर्थात 'अहं का मनोभाव' रहता है, उसे बढ़ावा देकर उसकी आड़ में असल में अपने व्यक्ति-नेतृत्व को ही चलाते जाना चाहते हैं, क्योंकि पार्टी के नेतृत्व में अगर और भी बुद्धिमान लोग आ जायें, तो नेतृत्व में द्वन्द्व पैदा होगा—इसी डर से वे उपरोक्त तर्क की आड़ में पार्टी के अंदर नेतृत्व में अधिक संख्या में बुद्धिजीवियों को नहीं आने देना चाहते हैं।

केवल श्रमिकों द्वारा नेतृत्व संभालने पर ही क्रांति सफल होगीः पूर्णतः भ्रामक विचार

दूसरा यह कि, 'मजदूरों के नेतृत्व में आने से ही क्रांति होगी'—इस धारणा के द्वारा वे एक और गलती के शिकार बनते हैं। वे समझ नहीं पाते हैं कि इस धारणा में गलती कहां है? वे समझ नहीं पाते हैं कि एक मजदूर सिर्फ मजदूर होने के नाते ही क्रांतिकारी नहीं हो जाता। क्योंकि पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था के अंदर एक मजदूर जिस वास्तविक स्थिति में है, उसके फलस्वरूप उसके चिंतन, मनन, संस्कृति, आचरण एवं आदत वगैरह सभी बुर्जुआ संस्कृति से प्रभावित हैं। यहां तक कि विचार करने पर दिखाई देगा कि उसके मन में जो एक मजदूर-मनोवृत्ति काम करती है, वह भी बुर्जुआ वर्ग-चिंतन के ढांचे के अंदर मालिक के खिलाफ व्यक्तिगत द्वेष एवं ईर्ष्या-जनित एक मानसिक जटिलता (complex) की अभिव्यक्ति मात्र है। यह सर्वहारा वर्ग-चेतना का रूप नहीं है। सर्वहारा वर्ग-चेतना वाले किसी व्यक्ति की बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ लड़ाई निर्वैयक्तिक वर्ग-चेतना से प्रेरित लड़ाई (impersonal class fight) होती है।

बुर्जुआ व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई की उसकी चेतना इस ईर्ष्या से पैदा नहीं होती है कि वह खुद अमीर नहीं है। यहां तक कि उसकी

आर्थिक और राजनैतिक मांगों की लड़ाई का चरित्र भी व्यक्तिगत नहीं, बल्कि निर्वैयक्तिक (impersonal) है। उसकी घृणा वर्ग के विरुद्ध है, किसी व्यक्ति के विरुद्ध व्यक्तिगत घृणा नहीं। अगर घृणा व्यक्तिगत होती है, उसकी उत्पत्ति अगर वर्ग-चेतना के आधार पर नहीं होती है, तो एक मजदूर भी अनुकूल वातावरण एवं परिस्थिति में स्वयं एक बुर्जुआ में परिवर्तित हो सकता है। जैसे, एक समय ब्राह्मण लोग तथाकथित नीची जाति के लोगों को शास्त्र की बातें बताकर शोषण करते थे—यह जातिवाद था। फिर, जिन्होंने ब्राह्मणों को रोकने का प्रयास किया, उन्होंने भी तो विपरीत अर्थ में जातिवाद की ही हवा बहायी। इसे क्या कोई वर्ग-संघर्ष कहेगा? आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में रोजमर्रे की लड़ाइयों से खुद-ब-खुद जो वर्ग-चेतना पैदा होती है, चेतना के उस स्तर को पार करते हुए जब मजदूर वाकई क्रांतिकारी वर्ग-चेतना को अपनायेंगे एवं वर्ग-संघर्ष संबंधी मार्क्सवादी सिद्धांत को सही रूप में हासिल कर सकेंगे, तभी मजदूर वर्ग से आये हुए कैडर व्यक्तिगत द्वेष से नहीं, बल्कि सही वर्ग-चेतना अर्थात निर्वैयक्तिक वर्ग-चेतना (impersonal class consciousness) के आधार पर बुर्जुआ वर्ग के आधिपत्य एवं हमारे समाज में व्याप्त जात-पांत जनित अपमान (caste humiliation) के खिलाफ भी सही ढंग से लड़ना जानेंगे और केवल तभी वे अपने अंदर जो जातिगत अपमान बोध काम करता है, उसके स्वरूप को भी सही-सही पकड़ पायेंगे एवं उसके साथ-साथ अपने अंदर काम करने वाले वर्गगत अपमान बोध (class humiliation) के विरुद्ध लगातार लड़ाई चलाते हुए कम्युनिस्ट बनने की कोशिश करते रहेंगे।

आजकल मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्रांतिकारी सिद्धांत की एक और सर्वमान्य बात का अति सरलीकृत एवं विकृत प्रयोग चल रहा है। वह यह कि सही प्रोलेटेरियन (सर्वहारा) चरित्र हासिल करने के लिए जनता के साथ एवं प्रोलेटेरियटों के साथ रहना होगा। यह सही है कि जनता के बीच जाना, प्रोलेटेरियटों से मिलना, मजदूरों के साथ घुलमिल जाना, उनके साथ रहना एवं उनके बीच रहकर क्रांतिकारी सिद्धांत और पार्टी के प्रोग्राम के अनुसार काम करना—ये सब क्रांतिकारी बनने की अनिवार्य शर्तें हैं। इनके द्वारा कार्यकर्ताओं में कुछ-कुछ परिवर्तन लाने में निश्चय ही सहायता मिलती है, लेकिन यह कहना कि मध्यम वर्गीय बुद्धिजीवी परिवारों से

आये हुए 'कैडर' सिर्फ इसी से सर्वहारा क्रांतिकारी चरित्र पा जायेंगे–यह एक अति सरल बयान (over-simplified statement) है। अगर यही सच होता, तो गांधीवादी लोग सर्वहारा क्रांतिकारी क्यों नहीं बन पाये? उन्होंने भी तो जनता के बीच जाकर काम किया है। फिर जो लोग मार्क्सवादी आंदोलन से भटक गये हैं, क्या उनमें से भी बहुत लोगों ने जनता के बीच रहकर काम नहीं किया है? यह कहना गलत होगा कि वे लोग ऊपर से बैठे-बैठे जनता को सिर्फ उपदेश (sermons) देते रहे। हमारे देश में हजारों ऐसे मार्क्सवादी एवं कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं और नेताओं के उदाहरण हैं, जिन्होंने जनता के बीच रहकर काम किया और हर तरह की जुझारू लड़ाइयों का नेतृत्व करने के बावजूद आज बिल्कुल कम्युनिस्ट-विरोधी बन गये हैं। आज भी हम देखते हैं कि कम्युनिज्म का विचार और झंडा लेकर जो लोग काम करते हैं और रात-दिन मजदूरों के बीच पड़े रहते हैं–उनमें से अधिकांश आज मजदूर आंदोलन में अवसरवादी हो गये हैं; उनमें से बहुत लोग आज मालिकों के दलाल बन गये हैं। मजदूरों के बीच काम करते हुए वे मजदूरों को कम्युनिस्ट नहीं बना पाये, उनके अंदर क्रांतिकारी चेतना नहीं ला पाये, बल्कि उल्टे बुर्जुआ समाज में मजदूरों की जो अधोगामी संस्कृति रहती है, वे लोग खुद ही उसके शिकार हो गये।

श्रमिकों को भी स्वयं को बुर्जुआ धारणाओं से मुक्त करते हुए कम्युनिस्ट चेतना के स्तर तक ऊंचा उठना होगा

लेनिन ने कहा है–मजदूरों के बीच जाओ, स्वयं मजदूर जैसे बनने के लिए नहीं, बल्कि उन्हें कम्युनिस्ट के स्तर तक उन्नत करने के लिए। अर्थात मजदूरों के पास जो कुछ है, उसे उस रूप में लेने के लिए हम उनके पास नहीं जाते हैं। हम उनके जीवन से सीखने के लिए उनके बीच जाते हैं। इस बात का मतलब यह है कि हमने ज्ञान-विज्ञान के जरिये प्रोलेटेरियन क्रांतिकारी राजनीति और संस्कृति की जो भावना-धारणा पायी है, उसे उन लोगों के जीवन से शिक्षा लेकर और भी उन्नत करके फिर उन्हें ही लौटा देते हैं। उन्हें कम्युनिस्ट बनाने के लिए, जगाने के लिए ही हम उनके बीच जाते हैं। हम उन्हें कम्युनिस्ट बनाने जाते हैं, लेकिन अगर हम खुद ही कम्युनिस्ट संस्कृति हासिल नहीं कर सकेंगे, तो क्या

सिर्फ कुछ कम्युनिस्ट राजनैतिक लफ्फाजी से ही हम उन्हें क्रांतिकारी बना पायेंगे? नहीं, यह कतई संभव नहीं है। इसलिए जो लोग जनता से सम्पर्क और जनता के आंदोलनों का नेतृत्व करेंगे, उन्हें इन आंदोलनों को चलाने के साथ-साथ यह देखना होगा कि उनका सिद्धांत ठीक है या नहीं, उनकी राजनीति क्रांतिकारी है या नहीं एवं अपने जीवन के दृष्टिकोण व संस्कृति को बदलने के लिए एक जीता-जागता आंदोलन हमेशा उनका पथ-प्रदर्शन (guide) कर रहा है या नहीं। इसलिए किसी सरल रास्ते से इसका समाधान संभव नहीं है। यह हमेशा खयाल रखना चाहिए कि इस समाज का कोई मजदूर भी बुर्जुआ चिंतनधारा से प्रभावित मजदूर है। उसकी स्थिति, उसकी संस्कृति, उसका सब कुछ बुर्जुआ संस्कृति के प्रभाव से प्रभावित है। यह सही है कि मजदूर होने के नाते उसके लिए क्रांतिकारी वर्ग-चरित्र हासिल करना तुलनात्मक रूप से आसान है, लेकिन फिर भी उसे अपने-आप को बुर्जुआ चिंतनधारा के प्रभाव से मुक्त करके कम्युनिस्ट चेतना के स्तर पर उन्नत करना होगा—अपने को कम्युनिस्ट में तब्दील करना होगा। इसलिए मार्क्स ने कहा कि इस समाज में मजदूर पहले अपने आपको क्रांतिकारी के तौर पर बदल लेंगे, तभी वे क्रांति का नेतृत्व कर सकेंगे।

इस प्रसंग में आपको यह याद रखना जरूरी है कि 'लुम्पेन प्रोलेटेरियेट' अर्थात बुर्जुआ शोषण की चक्की में पिस रहे एवं उसकी पतित संस्कृति के शिकार बने हुए प्रोलेटेरियेटों का जो हिस्सा अभी 'लुम्पेन' बन गया है, वह जब तक इस 'लुम्पेन' संस्कृति' के प्रभाव से अपने को मुक्त करके मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत को नहीं अपनायेगा और इसके अनुसार अपने जीवन को नहीं बदलेगा, तब तक क्रांति करना तो दूर की बात, उसके लिए क्रांतिकारी आंदोलनों में भाग लेना भी संभव नहीं होगा। मार्क्स से लेकर माओ त्से-तुग तक सभी ने कहा है—किसी खास मौके पर ये 'लुम्पेन प्रोलेरिटेरियेट' हो सकता है कोई संगठन बना लें और कुछ राजनैतिक एवं आर्थिक मांगों के लिए लड़ाई भी कर लें, लेकिन इस तरह वे क्रांति कतई नहीं कर सकते, बल्कि इतिहास बतलाता है कि इन 'लुम्पेन प्रोलेटेरियेटों' के संगठनों ने हर समय क्रांति का विरोध ही किया है। छद्म क्रांतिकारी पार्टियां (pseudo revolutionary parties) क्रांति-विरोधी हथियार के रूप में इनका इस्तेमाल किया करती हैं।

निश्चित रूप से पेटी-बुर्जुआ मानसिकता, ढुलमुलपन, अहं-केन्द्रित चिंतन और व्यक्तिवादी आचरण-व्यवहार का परित्याग करना चाहिए

कम्युनिस्ट बनने की इस प्रक्रिया में मध्यम वर्ग वालों को मध्यम वर्गीय मानसिकता, पेटी-बुर्जुआ ढुलमुलपन, आदत, आचरण और सर्वोपरि व्यक्तिवादी चिंतन-पद्धति छोड़नी होगी और मजदूरों को छोड़नी होंगी अपनी गंवारू आदतें (rustic habits)। अर्थात पुराने सामंती समाज के कुसंस्कारों एवं विभिन्न प्रकार की अप-संस्कृति और बुर्जुआ वर्ग के कुत्सित (vulgar) व्यक्तिवाद के प्रभाव से उन्हें अपने को मुक्त करना होगा। हमारा देश एक पिछड़ा हुआ, लेकिन प्रतिक्रियाशील पूंजीवादी देश है, जहां मजदूरों में वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के तीन प्रकार के प्रभाव दिखलाई देते हैं। जब तक उनमें क्रांतिकारी चेतना नहीं आ जाती, वे तीन भागों में बांटे जा सकते हैं। एक वे जो किसान परिवारों से आते हैं एवं किसान समाज के साथ संबंध रखते हैं। वे सामंती समाज के कुसंस्कारों, हठधर्मीपन एवं नाना प्रकार की गंवारू सामंती समाज की संस्कृति के शिकार हैं। उन्हें इससे मुक्त होना होगा। दूसरा तबका है निम्न मध्यम दर्जे के परिवारों से आने वाले मजदूरों का, जो आर्थिक कारणों से मजदूर वर्ग में रूपान्तरित हुए हैं, मगर मजदूर में तब्दील हो जाने के बावजूद आज तक वे बाबू समाज के साथ अपने सांस्कृतिक, नैतिक, रुचिगत तथा आदतगत संबंध नहीं छोड़ पाये और इसी कारण वे मजदूरों के बीच मध्यम दर्जे वाले बाबू समाज की मानसिकता, पेटी-बुर्जुआ ढुलमुलपन एवं नेतृत्व का झगड़ा और अर्थवाद ला घुसेड़ते हैं। मजदूरों का एक और हिस्सा है, जो संख्या में कम है, मगर जो उपरोक्त दोनों धाराओं से एकदम अलग होकर वर्ग के खयाल से सर्वहारा के सबसे क्रांतिकारी तबके में ढल चुका है। मजदूरों में वे ही इस अर्थ में सबसे ज्यादा क्रांतिकारी हैं, क्योंकि पुराने समाज के साथ उनके सभी प्रकार के सामाजिक संबंध टूट चुके हैं। लेकिन वे बुर्जुआ समाज की सबसे प्रतिक्रियाशील संस्कृति अर्थात विकृत व्यक्तिवादी उग्रता (vulgar individualistic desperateness) जो उग्रता उद्देश्यहीन अर्थात अंधतापूर्ण है, उसके पूरी तरह शिकार हैं। शिक्षित, तथाकथित सचेत

(enlightened) बुर्जुआ के अंदर जो कुत्सित व्यक्तिवाद है, जिसे शिक्षा के आवरण की वजह से हम उसी रूप में देख नहीं पाते हैं, उसी कुत्सित व्यक्तिवाद का प्रभाव इन मजदूरों पर दिखाई देता है। फलस्वरूप मजदूरों के इस सबसे अगुआ दस्ते, जो उस वर्ग में अपने स्थान के खयाल से सबसे ज्यादा क्रांतिकारी है, को भी अगर बुर्जुआ कुत्सित व्यक्तिवाद की मनोवृत्ति से मुक्त नहीं किया जा सका और अगर उनमें समूह के प्रति उत्तरदायित्व (obligation) एवं सामूहिकता की भावना पैदा नहीं की जा सकी अर्थात कम्युनिस्ट चेतना नहीं भरी जा सकी, तो वे भी खुद–ब–खुद कम्युनिस्ट नहीं बन पायेंगे। इसलिए उन्हें भी कम्युनिस्ट चरित्र हासिल करना होगा।

आवश्यक उच्च सांस्कृतिक स्तर अर्जित करने के संघर्ष से बचकर कम्युनिस्ट नहीं बना जा सकता

इस चर्चा से आप लोग आसानी से समझ गये होंगे कि अपने को अगर मार्क्सवादी और क्रांतिकारी बनाना हो, तो हर एक को व्यक्तिगत एवं सामूहिक तौर पर सही पद्धति से सचेत संघर्ष के जरिये मार्क्सवाद को एक सही, सच्चे जीवन दर्शन (philosophy of life) के रूप में अपनाना होगा, जो जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित और परिवर्तित करेगा। केवल राजनैतिक सिद्धांत विश्लेषण के लिए ही मार्क्सवाद है–इस रूप में मार्क्सवाद को लेने से या द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के तीन सूत्रों को याद कर लेने से ही कोई मार्क्सवादी–लेनिनवादी नहीं बन सकता। केवल पार्टी के किसी न किसी संगठन के अंतर्गत रहकर जनता के क्रांतिकारी आंदोलन गठित करने के संघर्ष में अपने आपको सक्रिय रूप से शामिल रखकर अपने व्यक्तिगत चिंतन और व्यक्तिगत स्वार्थ को सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी चिंतन और स्वार्थ के साथ अर्थात क्रांति के हित के साथ एकात्म करने के लिए लगातार अथक संघर्ष के जरिये उन्नत सांस्कृतिक स्तर हासिल करते हुए ही कोई व्यक्ति एक सही कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्वकारी कार्यकर्ता में तब्दील हो सकता है। इस संघर्ष के बिना कोई कितना ही क्षमतावान क्यों न हो, कम्युनिस्ट नहीं बन सकता। यहां तक कि मानवेन्द्र नाथ (एमएन) राय जैसे क्षमतावान बुद्धिजीवी व्यक्ति भी इस संघर्ष से बचने के कारण ही अंततः कम्युनिस्ट नहीं बन पाये। हालांकि उनकी बौद्धिक क्षमता के आगे सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल

नेहरू एवं यहां तक कि उस समय के अनेक समाजवादी व मार्क्सवादी नेता भी सिर झुकाते थे। उस समय भारत में वे ही एक मार्क्सवादी के रूप में परिचित नेता थे, जिन्होंने ज्ञान-विज्ञान की लगभग सभी शाखाओं में विचरण किया था। लेकिन इतनी बड़ी बौद्धिक क्षमता लेकर भी, लेनिन के साथ रहकर भी, कम्युनिस्ट आंदोलन से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित रहते हुए भी, आखिर में वे घोर कम्युनिस्ट-विरोधी बन गये थे। बौद्धिक सामर्थ्य के इतने ऊंचे स्तर पर होते हुए भी एवं ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में दखल रखते हुए भी वे अपनी हिफाजत नहीं कर पाये। इसका कारण यह है कि ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न सिद्धांतों की जानकारी हासिल करने के साथ-साथ द्वन्द्वात्मक पद्धति से उन सभी को वे ठीक से संयोजित नहीं कर पाये थे। व्यक्तिगत जीवन के प्रत्येक आचरण, आदत और चरित्र की अभिव्यक्ति मार्क्सवाद-लेनिनवाद एवं क्रांतिकारी आंदोलन की पूरक है या नहीं—यह ध्यान में रखकर, मजदूर वर्ग के स्वार्थ के साथ अपना व्यक्तिगत स्वार्थ एकाकार कर देने के सघर्ष को वे पार्टी के अंदर सही तरह से चला नहीं पाये। नतीजा यह हुआ कि इतनी बड़ी क्षमता रहने पर भी अंत में वे एक घोर प्रतिक्रियावादी कम्युनिस्ट-विरोधी बन गये।

कम्युनिस्ट विचारधारा की महानता कायम रखने एवं पूंजीवाद-विरोधी समाजवादी क्रांति का नेतृत्व करने हेतु भारत में एकमात्र सही कम्युनिस्ट पार्टी एसयूसीआई को सुदृढ़ करें

हमारे देश में पहले की अविभाजित सीपीआई और अभी तीन हिस्सों में बंटी हुई इस पार्टी का इतिहास, इसके नेताओं और कार्यकर्ताओं के क्रियाकलाप, व्यवहार, आचरण आदि का विश्लेषण करके देखा गया कि इन सभी ने पार्टी-गठन की दिशा में कम्युनिस्ट पार्टी गठित करने के लिए जरूरी यह असल संघर्ष किये बिना ही पार्टी बना लेने का प्रयास किया है। कार्यकर्ताओं की ईमानदारी, निष्ठा, आत्म-त्याग, लड़ाई आदि सब कुछ के बावजूद व्यक्तिवाद के असर से अपने को पूरी तरह मुक्त रखने के लिए पार्टी और क्रांति के साथ अपने जीवन को एकात्म कर देने का जो संघर्ष पार्टी के अंदर सचेत और सामूहिक रूप से चलाना जरूरी है, उसे सही तरह से नहीं चला पाने के फलस्वरूप इनमें से कोई भी सही

क्रांतिकारी पार्टी नहीं बन पायी। नतीजा यह हुआ कि मार्क्सवाद को विचारधारा के रूप में मान लेने के बावजूद पार्टी में कम्युनिस्ट चरित्र लाने तथा जो लोग पार्टी-गठन के काम में संलग्न हुए उनमें (1) जीवन के सभी पहलुओं तथा व्यवहारों के बारे में एक वैचारिक केन्द्रीयता (ideological centralism covering all aspects of life and every activity) हासिल करने, अर्थात एक चिंतन प्रणाली (one process of thinking), चिंतन की एकरूपता (uniformity of thinking), एक नजरिया (oneness in approach) और एक लक्ष्य (singleness of purpose) हासिल करने; (2) सामूहिक नेतृत्व की एक ठोस धारणा (concrete conception of collective leadership) पैदा करने; और (3) पेशेवर क्रांतिकारियों (professional revolutionaries) का एक दस्ता तैयार कर पाने के लिए जिस जटिल और लम्बे अर्से तक चलने वाले संघर्ष की जरूरत है, उससे बचकर चलने की वजह से आखिरकार सीपीआई और सीपीआई (एम) दोनों ही पार्टियां कुछ पेटी-बुर्जुआ राजनैतिक गुटों और व्यक्तियों द्वारा आम तौर पर लिये गये राजनैतिक कार्यक्रम के आधार पर एक साथ राजनैतिक लड़ाई चलाने के एक-एक प्लेटफार्म बनकर रह गयी हैं और नक्सलपंथियों ने अगर पार्टी बनायी, तो उसका भी यही हश्र होगा।

इस तरह विभिन्न पहलुओं से चर्चा करके हमने देखा कि पहले की अविभाजित सीपीआई एवं अभी तीन हिस्सों में बंटी हुई इस कम्युनिस्ट पार्टी के किसी भी हिस्से द्वारा चाहे और दूसरा जो भी काम क्यों न हो जाये, शोषित जनता के पूंजीवाद-विरोधी मुक्ति-संघर्ष जैसी जटिल लड़ाई की अगुआई करना हरगिज मुमकिन नहीं है। सैद्धांतिक मामलों में इनकी तरह-तरह की गलतियों की बात छोड़ देने पर भी कम्युनिस्ट आंदोलन में जो चीज सबसे खतरनाक रूप में दिखलाई दे रही है, जो देश का बेशुमार नुकसान करती जा रही है, वह है इन पार्टियों के नेताओं और कार्यकर्ताओं के दैनन्दिन जीवन के तौर-तरीके और व्यवहार के मामले में मौकापरस्ती एवं आचार-आचरण और बोल-चाल में इनके गिरे हुए सांस्कृतिक स्तर की झलक, जिन विषयों को लेकर मैं इतनी देर से आपके सामने चर्चा कर रहा हूं। कम्युनिस्ट विचारधारा जैसे एक इतने बड़े वैज्ञानिक और महान विचार की इज्जत को ये लोग जनसाधारण की नजरों में धीरे-धीरे गिराते जा रहे हैं।

इसलिए कम्युनिज्म के विचार एवं क्रांतिकारी संघर्ष के महान प्रतीक लाल झंडे की मर्यादा की रक्षा करने के लिए तथा पूंजीवाद–विरोधी संघर्ष में नेतृत्व देने के लिए ही इस देश में एक सही कम्युनिस्ट पार्टी गठित करना और उसे शक्तिशाली बनाना आवश्यक है। इसलिए इस ऐतिहासिक काम को पूरा करने के लिए बहुत दिनों के अथक संघर्ष के बीच से गुजरते हुए एसयूसीआई इस देश में एक साम्यवादी पार्टी की सभी विशेषताओं को लेकर ही गठित हुई है।